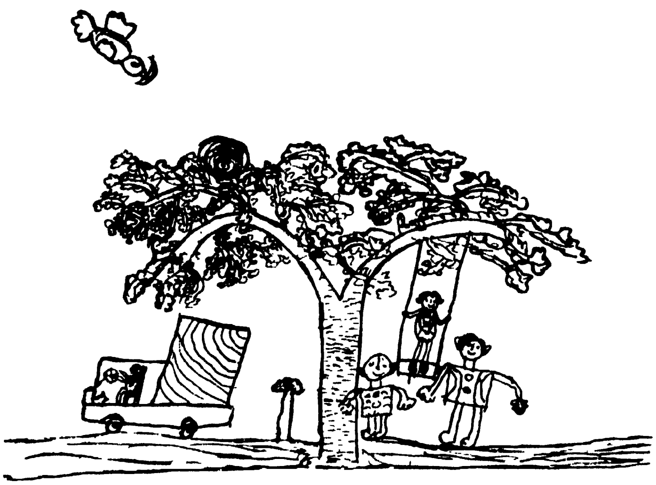


राणी पांढरकामे, छठवीं, पुणे





कीर्ति चौहान, टिमरनी

चकमक
[illegible] 1992
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इस अंक में

आवरण फोटो : के. आर. शर्मा

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।



चित्र : विवेक

पेड़ का दर्द

__पेड़__ के नीचे रुककर सुस्ता लिया, फिर कापी निकाली तो एक लंबी सांस सुनकर चौंका। पर आसपास कोई नहीं था। मैंने सोचा, भ्रम हुआ होगा, हवा होगी। फिर लिखने की ओर दत्तचित्त (एकाग्र) हुआ। लंबी सांस फिर सुनाई दी। पेड़ ने लंबी सांस ली थी।

मैंने कहा, "क्यों, पेड़ क्या हुआ?"

पेड़ ने कहा, "तुम कवि हो न?"

मैंने कहा, "हूं भी तो क्या? वन-प्रकृति का भक्त हूं, पेड़ों से प्रेम है मुझे-"

पेड़ टोककर बोला, "होगा, होगा। तुम पेड़ पर कविता लिखो, या पेड़ को बचाने के आंदोलन के लिए ही कविता लिखो, छपेगी तो पेड़ की लुगदी पर ही न! जब-जब कोई लिखता है, मैं लंबी सांस लेता हूं-यह पेड़ काटने का एक और निमित्त (कारण) बना.........।"

पेड़ ने फिर लंबी सांस ली।

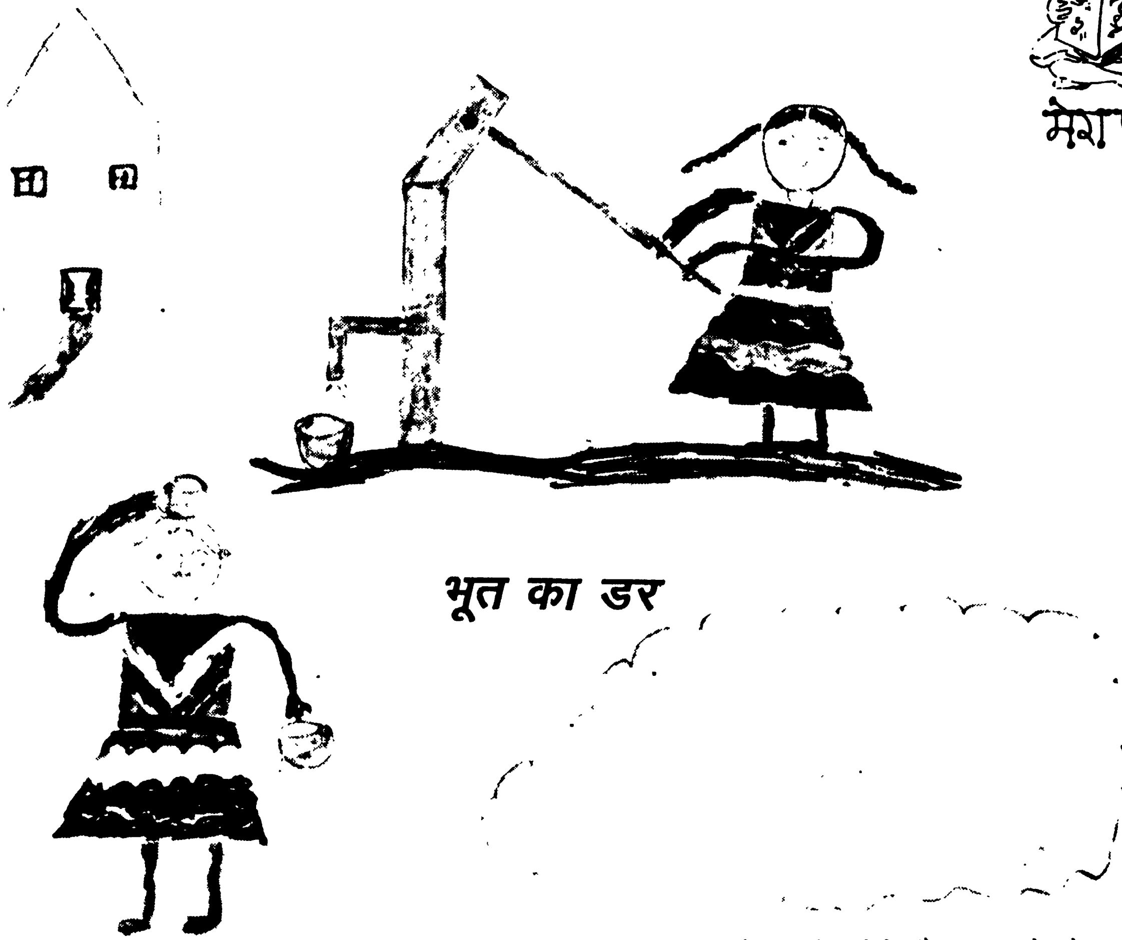
पेड़ के साथ कविता का यह भी रिश्ता है। इतना साफ नहीं दिखा था न?

कम लिखो। जब तक अनिवार्य न हो मत लिखो। जितना बनाना-संवारना है, मानस में ही करके तब रूप को काग़ज़ पर उतारो-जितना घना, छोटा, गठीला बनाकर संभव हो.........।

और हमेशा पहले पेड़ को प्रणाम करके, क्योंकि वही तुम्हारी बलि है ......।

❑ अज्ञेय





भूत का डर

शारदा, सातवीं

हमारे नगर हाटपीपल्या में गर्मी के दिनों में पानी की बहुत समस्या रहती है। महिलाओं और बच्चों को भी पानी दूर-दूर से लाना पड़ता है। हमें एक बार एक आदमी ने डरा दिया कि नदी के पास वाले हेंडपंप पर जाने वाले रास्ते पर जो इमली का पेड़ है, वहां भूत रहता है। बस फिर क्या था हम रात को हेंडपंप पर नहीं जाते।

एक दिन हमारे पापा ने समझाया कि भूत सचमुच के नहीं होते हैं यह तो केवल रोते बच्चों को डराकर चुप करवाने की बातें हैं।

इसके बाद हम डरते-डरते पापा के साथ हेंडपंप पर पानी भरने गए किंतु हमें कोई भूत नहीं दिखा। तब से हमारा डर जाता रहा। अब हम भूत के नाम से नहीं डरते।

❑ कुंदन पाराशर, चौथी, हाटपीपल्या, देवास

पहेलियां

पानी में पैदा होता, पानी में मर जाता,
भोजन से तो रहा सदा से मेरा गहरा नाता।

दोनों का आकार एक है और एक ही नाम,
दाएं-बाएं दोनों गूंजें, सुनकर करते काम।

बचपन हरा-हरा होता है और बुढ़ापा पीला,
आम, संतरा-सा नहीं मौसमी, सचमुच बड़ा रसीला।

❑ सौरभदीन, अमित फ्रेंक्लिन, शिवराज शर्मा, आठवीं, रायपुर



बरसात

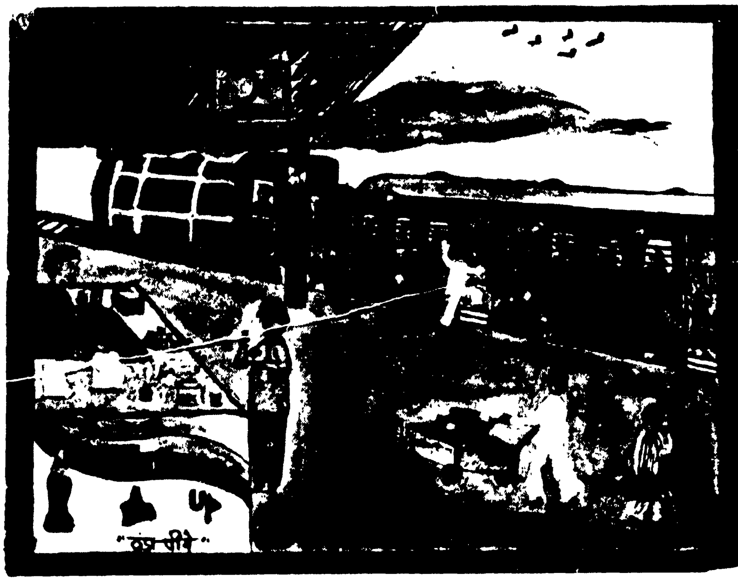
देखो-देखो आई बरसात
लाई रिमझिम की सौगात
बच्चे थे बेचारे उदास
सूख गई थी बेचारी घास
सबके ऊपर वर्षा ने फेरा हाथ
देखो-देखो आई बरसात।
कागज़ की नौकाएं लाई
बहुत सारी ख़ुशियां लाई
बहुत दिनों के बाद हो रही
वर्षा से अपनी मुलाक़ात
देखो-देखो आई बरसात।
बादल आए भर-भर खेत
चले न आंधी, उड़े न रेत
बादल काले-काले और सफ़ेद
खुल गया अब इनका भेद
लेकर आए हैं मौसम की बारात
देखो-देखो आई बरसात।

❑ विपत भारती गोस्वामी
हिरणखेड़ा, होशंगाबाद



ऋतुपर्णा दुबे, तीसरी, सागर

बिना टिकिट यात्रा



सुस्मित जोशी, बड़नगर, उज्जैन

बात उस समय की है, जब मैं रेलगाड़ी से मौसी के घर जा रहा था। तो जाते समय टिकिट लेकर नहीं गया क्योंकि जैसे ही हम पटना रेलवे स्टेशन पर पहुंचे, वैसे ही गाड़ी खुल चुकी थी और मैंने दौड़कर गाड़ी पकड़ी। इसी कारण मैंने टिकिट नहीं लिया। मैं गाड़ी में बैठा हुआ था और मुझे बहुत डर लग रहा था। टी.टी. साहब आ जाएं और मुझसे पूछें कि अपना टिकट निकालो, तो मैं क्या जवाब दूंगा?

इसी बात को सोचते हुए जा रहा था। भगवान का शुक्र था कि उस समय टी.टी. साहब नहीं आए। गाड़ी स्टेशन के पास रुकी तो मैं गाड़ी से उतर कर मौसी के घर पहुंचा। मौसी और भैया को सारी बातें बताईं। एक दिन मौसी के घर रहा और दूसरे दिन अपने घर आने लगा। तब मैं घर आने के लिए स्टेशन पर पहुंचा तो रेलगाड़ी का सिग्नल हो चुका था लेकिन गाड़ी का वैक्यूम कटा हुआ था। भैया मुझे रेलवे स्टेशन तक छोड़ने आए थे। उन्होंने कहा, "तुम गाड़ी पर चढ़ो और दरवाज़े पर खड़े रहना। मैं टिकिट लेकर आता हूं।"

मैं गाड़ी में चढ़ गया। मैं दरवाज़े पर खड़ा भैया को देख रहा था। भैया टिकिट लेकर तेज़ी से दौड़ते हुए आ रहे थे। रेलगाड़ी तेज़ होती जा रही थी। अंत में मुझे टिकिट नहीं मिल सका। मुझे फिर वही डर कि कहीं टी.टी. साहब न आ जाएं।

किसी तरह सफ़र के आधे रास्ते तक पहुंचा। पटना के एक स्टेशन पहले टी.टी. साहब आए। जिनके पास टिकिट नहीं था सभी लोग भागने लगे। मैं बहुत डर गया था। मैं भी उन लोगों की भांति भागने लगा। फिर किसी तरह टी.टी. साहब से जान छूटी।

मुझे कम-से-कम चार-पांच किलोमीटर पैदल चलना पड़ा। मेरे पैरों में बहुत दर्द हो रहा था, फिर किसी तरह अपने घर पहुंचा।

❑ प्रेमकुमार, कंकड़बाग कालोनी, पटना

मेरा पन्ना

पिटाई हुई

रविवार का दिन था। मैं बहुत रात तक गांव में घूमता रहा और फिर आकर मैं सो गया। सबेरे मेरी नींद नहीं खुली। मुझे स्कूल ज़रूर जाना था। मेरे पापा खेत में चले गए थे और मेरी छोटी बहन ने मुझे जगाया कि भैया चाय-पोहा खा लो। फिर भी मैं नहीं उठा। तब मेरी मम्मी आई और मुझे जगाया कि बेटा उठो नहीं तो पापा खेत से आते ही होंगे। फिर भी मैंने ध्यान नहीं दिया।

इतने में मेरे पापा खेत से आ गए। मेरे पापा ने सोचा कि मैं स्कूल गया होऊंगा। इतने में मेरे छोटे भाई ने कहा, "पापा, भैया सो रहा है।"

मेरे पापा गुस्सा होकर आए और मेरी बहुत पिटाई की। मैं उनके हाथ से छूट कर भाग गया। जब उनका गुस्सा समाप्त हुआ तब मैं आ गया।

❑ रामभरोसे जायसवाल, आठवीं, पिपलानी, देवास



चंद्रभूषण श्रीवास्तव, कट्ठीवाड़ा, झाबुआ

तैरना सिखाया

हम चार मित्र थे, एक कुएं पर नहाने गए। कुआं ज़्यादा गहरा नहीं था और चौड़ा भी ज़्यादा नहीं था। हममें से एक को तैरना नहीं आता था। उसने कहा, "मुझे तैरना सिखा दो।"

हमने कहा, "ठीक है। इधर से उधर के किनारे पर जाना और बीच में खड़े न होना।"

दो मित्र दोनों किनारे पर थे, एक बीच में था। वो इधर से उधर जाने लगा। और बीच में उसने बीच में खड़े मित्र का गला पकड़ लिया। उस पर लुमट (चढ़) गया। दोनों डूबने लगे। तब दोनों ओर से दोनों मित्रों ने सहारा देकर उन्हें निकाला। और फिर उसे तैरना सिखाया।

❑ बृजकिशोर वर्मा, देवली, देवास

लिखने की शुरूआत कैसे हुई?

'लिखने' के बारे में लिखने बैठो तो बात उलझकर रह जाती है। समझ नहीं आता कि कहां से शुरू करें? बहुत से सवाल मन में उठते हैं, जैसे लिखना कैसे शुरू हुआ? लिखने की ज़रूरत क्यों पड़ी? क्या बिना लिखे काम नहीं चल सकता था? जब 'लिखते' नहीं थे तो दुनिया कैसी थी? 'लिखना' न जानते तो दुनिया कैसी होती?..... वग़ैरह... वग़ैरह! ख़ैर.... अब लिखने के बारे में लिखने बैठे हैं, तो बात कहीं से तो शुरू करनी ही पड़ेगी!

आज हम इतना तो जानते ही हैं कि 'लिखना' हमारे लिए अपने आपको अभिव्यक्त करने का एक माध्यम है। संवाद का एक ज़रिया है। और ख़ासकर तब, जब सिर्फ़ बोलने भर से काम नहीं चलता। जैसे हम तुम सैकड़ों मील दूर बैठे हैं, सिर्फ़ बोलकर तो एक-दूसरे से बतिया नहीं सकते। लिखना ही हमारे-तुम्हारे बतियाने में मदद करता है।

लेकिन आज तो हमारे पास काग़ज़ और कलम से लेकर कई आधुनिक तरीक़े हैं अपनी बात लिखने और दूर-दूर तक पहुंचाने के। जब ये नहीं थे तो लोग कैसे बतियाते थे?

तुम जानते हो कि लिखने के लिए कुछ भाषा-संकेतों (अक्षरों) की ज़रूरत भी होती है। और इनका इस्तेमाल करना भी हमें आना चाहिए। तभी हम एक-दूसरे से 'बतिया' सकते हैं।

ये भाषा संकेत कैसे बने? इसके लिए हमें मानव के अतीत में झांकना होगा। आदिमानव के बारे में तुमने पढ़ा ही होगा। आदिमानव का अस्तित्व बीस लाख साल पहले से इस धरती पर माना जाता है। देखने में वह बंदर जैसा था। वह आगे को काफ़ी झुककर चलता था और उसके हाथ घुटनों से नीचे तक लटके रहते थे। आदिमानव मुंह से कुछ अस्पष्ट आवाज़ें ही निकाल पाता था। आवाज़ के ज़रिए ही वह अपना गुस्सा, अपना डर आदि व्यक्त करता था।



आवाज़ से ही वह सहायता के लिए पुकारता था या दूसरों को ख़तरे की चेतावनी देता था।

अंधेरी और नम गुफाएं आदिमानव का पहला-पहला घर थीं! बाद में उसने जानवरों की हड्डियों, खालों आदि से झोपड़ी बनाना सीखा। पत्थर, हड्डी, सींग आदि से औज़ार बनाने और आग पैदा करने की प्रक्रिया के दौरान आदिमानव के हाथों का विकास हुआ। हाथों की हरकतें पहले के मुकाबले अधिक नियंत्रित होती गईं और अंगुलियां ज़्यादा सुडौल और दक्ष। औज़ार बनाते वक्त आदिमानव को यह सोचना पड़ता था कि उसे कैसा आकार दे, कैसे बनाए, आदि। इसी तरह शिकार पर जाने से पहले आपस में यह भी तय करना होता था कि कौन व्यक्ति कहां रहेगा और कौन जानवरों के झुंड को कहां से कैसे खदेड़ेगा। ये सारी माथापच्ची आदिमानव के मस्तिष्क के विकास में मददगार साबित हुई। इसके साथ-साथ उसका माथा ऊंचा और चौड़ा होता चला गया। उसकी बोली भी साफ़ होती गई। लेकिन अभी उसकी भाषा विकसित नहीं



हुई थी। वह अपनी बात कहने के लिए हाथों का इस्तेमाल करता था। कुछ मांगने के लिए अपना हाथ आगे फैलाता। बुलाने के लिए हाथ का इशारा करता। किसी चीज़ को काटना है यह बताने के लिए हाथ से हवा को काटता। शायद इसी तरह इशारों की भाषा का जन्म हुआ होगा। हां, जहां इशारों से काम नहीं चलता था, वहां वह अपनी आवाज़ का उपयोग भी करता था। जैसे दूसरा व्यक्ति अगर उसकी ओर नहीं देख रहा हो तो वह उसे अपने इशारे की तरफ़ ध्यान दिलाने के लिए गरजता, गुर्राता। फिर धीरे-धीरे हाथों के साथ-साथ शरीर के अन्य अंगों का उपयोग भी करने लगा। इशारों की भाषा का इस्तेमाल तो हम आज भी करते हैं। जैसे जब हमें 'हां' कहना होता है, तो ज़रूरी नहीं कि हम 'हां' बोल कर ही कहें। कई बार हम अपना सिर भर हिला देते हैं। ऐसे तमाम और उदाहरण तुम ख़ुद सोच सकते हो।

जब तक आदिमानव के पास औज़ार कम थे, तब तक तो उसका काम, कम और सरल इशारों से चल जाया करता था। लेकिन जैसे-जैसे उसका काम बढ़ता गया, जटिल होता गया, उसके इशारे भी उतने ही जटिल होने लगे। हर चीज़ के लिए एक विशेष संकेत की ज़रूरत पड़ने लगी। वैसे तो इशारों की भाषा काफ़ी व्यापक हो सकती है, लेकिन फिर भी उसकी एक सीमा है। जैसे इशारों से अंधेरे में बात नहीं की जा सकती। यूं तो कई बार उजाले में भी इशारों की भाषा समझना आसान नहीं होता। अगर दो लोग दूर-दूर झाड़ियों में किसी शिकार की ताक में छुपे हों तो उनके बीच इशारों से बातचीत नहीं हो सकती। ऐसी कई और स्थितियां हो सकती हैं जब इशारों की भाषा काम नहीं आती।

ऐसे में आदिमानव को अपनी बात समझाने के लिए आवाज़ अधिक उपयोगी महसूस हुई। हालांकि पहले भी वह इशारों के साथ-साथ आवाज़ का इस्तेमाल तो करता था, लेकिन जीभ तथा मुंह से निकलने वाली आवाज़ों पर नियंत्रण नहीं हो पाने के कारण ध्वनि बहुत साफ़ नहीं होती थी।

जब आदिमानव साफ़-साफ़ ध्वनियां निकालने लगा तो बोलने की भाषा का विकास हुआ। इशारे की भाषा के मुकाबले बोलने की भाषा ने आदिमानव की बहुत मदद की।



लेकिन ज्यों-ज्यों समय गुज़रता गया बोलने की भाषा भी सीमित लगने लगी। अनुभव और जानकारियां बढ़ने लगीं। आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए इन्हें सहेज कर रखना ज़रूरी था। तब तक इन्हें केवल याद रखकर ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाया जाता था। लेकिन आख़िर कितनी चीज़ें याद रखी जा सकती हैं?

तो ऐसी ही विभिन्न ज़रूरतों के कारण लिखित भाषा की शुरूआत हुई। लिखने का आरंभ चित्रलिपि से हुआ। एक छोटा वृत खींचकर उसके चारों ओर किरणों की रेखाएं खींची जाएं तो यह चित्र या संकेत, 'सूर्य' के लिए होगा। इसी संकेत से 'तारे' या 'धूप' को भी बताया जा सकता है। लेकिन तब हम इसे भाव-संकेत कहेंगे। इसी प्रकार दो पैरों के संकेत से 'चलना' या 'दौड़ना' बताया जा सकता है। ऐसे ही चित्र संकेतों और भाव संकेतों से लिखने की शुरूआत हुई।

यहां यह भी याद रखना चाहिए कि पाषाण युग के मानव भी अपनी गुफाओं की दीवार पर सुंदर चित्र बनाते थे। संभवतः उनमें भी कुछ कहने की कोशिश की गई हो।

चित्र संकेतों से लिपियों तक आते-आते कई सौ साल लग गए। समय के साथ-साथ लिपियां विकसित हुईं। लिखने के लिए तरह-तरह के माध्यमों (पदार्थों) का प्रयोग किया गया। जैसे मिट्टी, पत्थर, धातु, लकड़ी, मोम, पैपीरस, चमड़ा आदि।

तो यह थी 'लिखने' की लंबी यात्रा की



संक्षिप्त कहानी। इस यात्रा की बहुत-सी बातों और पड़ावों का ज़िक्र यहां नहीं किया गया है। जैसे लिपि का क्या मतलब है? लिपियों का विकास कैसे हुआ? वर्णमाला कैसे बनी? आदि-आदि। इन सबके बारे में फिर कभी।

(मनोहर नोतानी द्वारा जुटाई गई सामग्री पर आधारित। चित्र : 'मनुष्य महाबली कैसे बना' से साभार।)

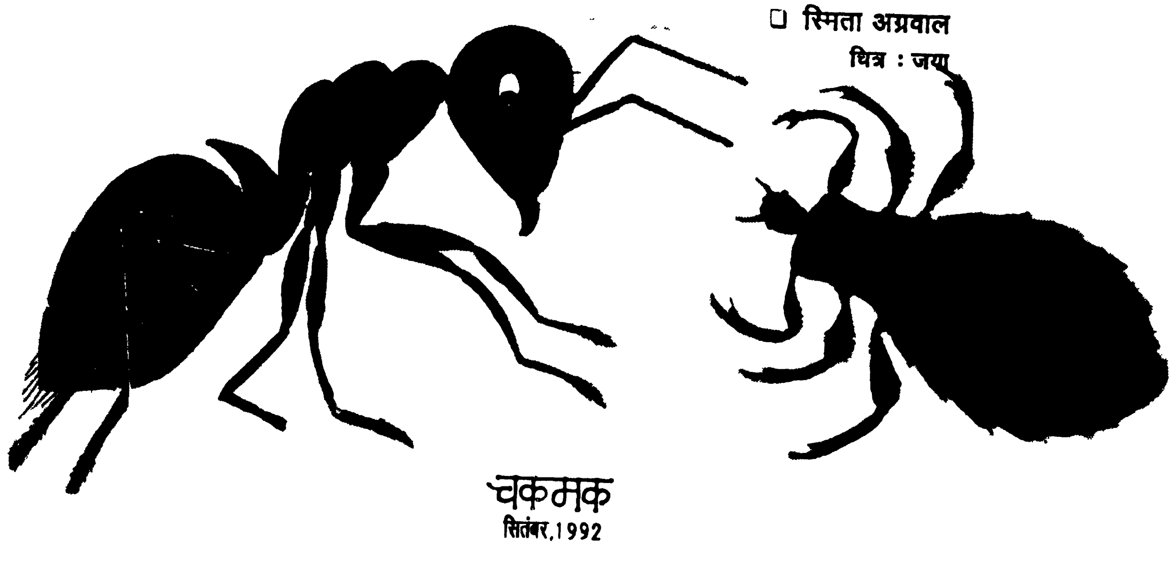


चींटी-जूं

कुक्कड़ कूं भई कुक्कड़ कूं
एक थी चींटी
एक थी जूं
चींटी बोली
जूं री जूं
मैं तो जाती
टिम्बक टूं!
बोली जूं
क्यों री क्यों??
हो गई उन में
धूंआऽ धूंऽऽ

आसमान तक
ख़ाक उड़ी
चींटी जी की
नाक चढ़ी
आऽ ऽ आ ऽ ऽ
आऽ ऽ क छूं ऽ ऽ ..
उड़ गई जूं
टिम्बक टूं
रह गई चींटी
ज्यों की त्यों
कुक्कड़ कूं भई कुक्कड़ कूं

❑ स्मिता अग्रवाल
चित्र : जया



बाल नाट्य उत्सव : एक अनूठा प्रयोग



हिमाचल में गत मई-जून के दौरान आयोजित पांच बाल रंग-शिविरों का समापन गत दिनों शिमला में राज्य स्तरीय "बाल नाट्य उत्सव" के रूप में हुआ। प्रदेश में अपनी तरह का यह एक अद्भुत प्रयास था।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय व प्रदेश कला अकादमी तथा कुछ सांस्कृतिक संस्थाओं के सहयोग से लगाई गई इन बाल रंग-कार्यशालाओं की खूब चर्चा रही। ये शिविर नाहन, सोलन, कांगड़ा, धर्मशाला व कुल्लू में लगाए गए। प्रत्येक शिविर की अवधि एक माह थी और हर एक में लगभग 30-35 बच्चों ने भाग लिया। कार्यशाला के दौरान तैयार की गई नाट्य प्रस्तुतियों का मंचन अपने-अपने स्थान पर तो हुआ ही, उन्हें शिमला उत्सव में भी मंचित किया गया। इससे शिविरों में भाग लेने वाले बच्चों का उत्साह दुगना हो गया।

नाहन शिविर की पहली प्रस्तुति, 'तू क्यों रोता है गिरधर?' एक ऐसे अनपढ़ व्यक्ति की कहानी है जो मरने के बाद यमलोक पहुंचता है। धर्मराज उसके कर्मों का खाता देखकर बताते हैं कि वह सारा जीवन बेगारी करता रहा। कर्ज़ों के काग़ज़ात पर अंगूठा लगाता रहा। अंततः गिरधर का बेटा उसे पढ़ाता है। दूसरी प्रस्तुति 'बच्चे कहां हैं?' स्कूल न जा सकने वाले उन लाखों बच्चों की कहानी है जो जंगलों में पशु चरा रहे हैं, होटलों, ढाबों, फैक्टरियों में काम कर रहे हैं। यह नाटक हमारी सामाजिक व्यवस्था पर तीखा प्रहार करता है।

दोनों नाटकों को बच्चों ने जिस सहजता, स्वाभाविकता, व कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया उसे देखकर दर्शक मुग्ध हुए बिना न रह सके। शिमला के अतिरिक्त ये दोनों नाटक देहरादून में भी खेले गए। यही नहीं, नाहन के इर्द-गिर्द बसी बस्तियों में भी इन नाटकों की आठ प्रस्तुतियां हुईं। नुक्कड़-नाटकों के रूप में ये दोनों बाल नाट्य प्रस्तुतियां ख़ूब खेली गईं और चर्चित रहीं।

बाल नाटक 'भूतनगरी' सोलन में हुए बाल रंग-शिविर की देन था। यह नाटक मानसिक स्तर पर बच्चों की कल्पनाओं के स्वप्निल संसार के मंचन का प्रयास था। भूतप्रेतों के प्रति हमारे अंधविश्वासों पर यह नाटक गहरी चोट करता है।

'काज़ी जी का भेष' कांगड़ा शिविर में तैयार की गई प्रस्तुति थी। नाटक के माध्यम से कोर्ट- कचहरियों में व्याप्त भ्रष्टाचार का कच्चा- चिट्ठा प्रस्तुत किया गया। कांगड़ी बोली में रचे गए संवादों ने इस प्रस्तुति को और उपयोगी बनाया।

अगली नाट्य प्रस्तुति के रूप में 'जंगल में मंगल' में नयापन दिखाई दिया, प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से। पर्यावरण को नाटक का विषय बनाया गया। मनुष्य को भावनात्मक स्तर पर जंगली पशु-पक्षियों व पेड़-पौधों से जोड़ने का सफल प्रयास इस नाटक में दिखाई दिया। बच्चों की भोली-भाली मुद्राओं व उनके जानदार अभिनय ने इसे एक यादगार प्रस्तुति बना दिया। यह नाटक धर्मशाला बाल नाट्य कार्यशाला की उपलब्धि थी।

कुल्लू बाल रंग-शिविर में तैयार नाटक का विषय भी पर्यावरण संरक्षण के आसपास रहा। निरंतर बिगड़ते पर्यावरण संतुलन के प्रति जनसाधारण में जागरूकता पैदा करने की दृष्टि से यह नाटक भी संतोषजनक रहा।

सभी प्रस्तुतियों में कुछ बातें सामान्य थीं। प्रत्येक बाल नाटक में स्थानीय लोक-कलाओं, लोक शैलियों व लोक पंरपराओं का सहारा लिया गया। इनके समावेश से सभी नाटक सतरंगी हिमाचली रंगों में रंग गए।

इन शिविरों का उद्देश्य मात्र बच्चों को स्टेज पर खड़ा करना नहीं था। बच्चों की सृजनात्मक प्रतिभा को विकसित करने के लिए उन्हें रंगमंच के अतिरिक्त कविता, कहानी, चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्य आदि अनेक विधाओं में प्रशिक्षण प्रदान किया गया। इस कार्य के लिए स्थानीय कलाकारों की सहायता ली गई तथा उन्हें सक्रिय रूप से इन शिविरों से जोड़ा गया।

बाल रंग-शिविरों की एक और उपलब्धि यह रही कि कुछ नाटकों की स्क्रिप्ट तैयार करने में बच्चों ने भी भागीदारी की। शिमला में बच्चों के साथ बड़ों ने भी इन नाट्य प्रस्तुतियों का आनंद लिया।

इन नाटकों को हफ़ीज़ खान, गुलशन बालिया, अमला राय, अशोक सागर व अणिमा नवीन ने निर्देशित किया।

❑ रपट : राजेंद्र रंजन, शिमला

बाल नाट्य उत्सव : एक भागीदार की डायरी

15 मई **: आज शिविर का पहला दिन है। सुबह नाहन के एस.एफ.डी.ए. हॉल में इस रंग-शिविर का उद्घाटन हुआ। उद्घाटन नाहन के जिला कलक्टर ने किया और उसके बाद हमें शिविर की समय-सारणी बताई गई।**

16 मई **: रंग शिविर में भाग लेने वाले सभी लोगों का आपस में परिचय करवाया गया। फिर हमसे बहुत सारे खेल खिलाए गए जिनमें से पार्सल और लीडर (नेता) प्रमुख थे।**

17 मई **: हम लोगों ने पेंसिल के बारे में समझा और चित्रकारी की। अब से हम छुट्टी के दिन दोपहर के दो बजे से और बाकी दिन दोपहर के तीन बजे से शिविर के लिए जाने लगे हैं। आजकल हमारा मन वहीं लगा रहता है और स्कूल से लौटकर हम इंतज़ार करते हैं कि कब तीन बजें।**

18-19 मई **: हमने चित्रकारी की।**

20-21 मई **: हम सबको नाटक करने का मौक़ा दिया गया। हमने नाटक और व्यायाम किया।**

22 मई **: हमने नाटक किया और गाने भी गाए। अब व्यायाम हर रोज़ होने लगा है और नाटक भी।**

23 मई **: हमने व्यायाम किया और मिट्टी के खिलौने बनाए।**

24 मई **: आज फिर से नाटक और व्यायाम किया।**

27 मई **: पिछले तीन दिनों में हमने एस.एफ.डी.ए. हॉल में आयोजित कार्यक्रम के लिए गानों की तैयारी की।**

29 मई **: आज एस.एफ.डी.ए. हॉल में हमारा कार्यक्रम हुआ जो कि बहुत अच्छा हुआ। इस खुशी में हम सबने शर्बत पिया।**

30 मई **: हम सबने अलग-अलग चीज़ों से मालाएं बनाना सीखा।**

31 मई **: हमने नाटक के लिए मेक-अप करना सीखा और सबने एक दूसरे का मेक-अप किया।**

1 जून **: हमने साक्षरता के मुद्दे को लेकर एक रैली निकाली और चौगान में समूह-गीत गाए।**

3 जून **: हमने 'बच्चे कहां हैं?' नाटक पढ़ा। हमें यह जानकारी भी मिली कि अन्य कार्यक्रमों के साथ ही मुख्यतः नाहन, देहरादून और शिमला में अलग-अलग दिन हमारे कार्यक्रम होंगे। अब सभी कार्यक्रम की तैयारी में जुट गए।**

इसके बाद हमारा पहला कार्यक्रम एस.एफ.डी.ए. हॉल में और एक बस्ती में हुआ। फिर दूसरा और तीसरा कार्यक्रम बड़े चौक और कैंटनमेंट स्कूल में हुआ। हमारी चौथी प्रस्तुति 26 जून को देहरादून में हुई। इस कार्यक्रम के बाद हम सबको सर्टीफिकेट भी मिला। देहरादून में भी जेल और बरोजा फैक्ट्री में हमारी प्रस्तुतियां हुईं। 29 जून को हमारी आखिरी प्रस्तुति शिमला में हुई।

इन सारे कार्यक्रमों के दौरान शिविर के सभी भागीदारों ने कड़कती धूप और गर्मी की परवाह न करके, साथ मिलकर मेहनत की। हमें गर्मी का एहसास ही नहीं हुआ और पता ही नहीं चलता था कि वहां रोज़ 1-2 घंटे कैसे बीत जाते थे।

30 जून **: रंग शिविर, नाहन के पहले दिन यानी 15 मई को, हम सब खुशी के साथ यह कह सकते थे कि शिविर का आज पहला दिन है। पर 30 जून को हम सब दुख के साथ कह रहे हैं कि आज रंग शिविर, नाहन का अंतिम दिन है।**

❑ आशीष कौशल, रानीताल, नाहन

चकमक में एक दिन

गत जुलाई में चकमक के 'घर' हिन्दी और कन्नड़ भाषा के कुछ जाने-माने लेखक आए। ये बच्चों के लिए भी लिखते हैं। इनमें से कुछ लेखकों की रचनाएं चकमक में भी प्रकाशित हुई हैं। इन लेखकों के साथ चकमक और चकमक में बच्चों द्वारा लिखी जा रही रचनाओं पर बातचीत हुई।

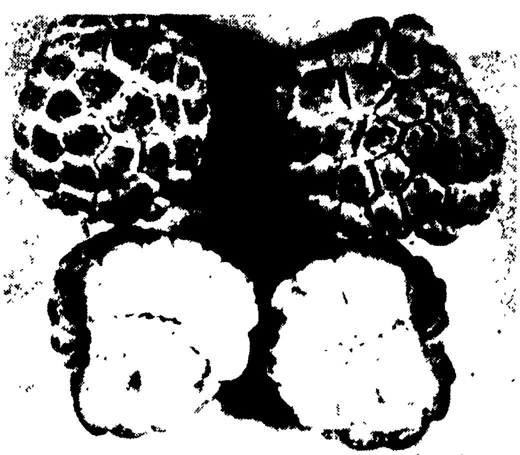
इसमें मुख्य रूप से चकमक के 'मेरा पन्ना' में छपने वाली रचनाओं पर लेखकों ने अपने विचार रखे और सुझाव दिए। ख़ासकर कविताओं तथा कहानियों पर विस्तार से चर्चा हुई। एक मत यह था कि बच्चों द्वारा लिखी गई कविता, कहानियों को सुधारकर छापा जाना चाहिए। दूसरी ओर कुछ लोगों का कहना था कि रचनाओं को ज्यों का त्यों रहने देना ही ठीक है- जो कि चकमक में होता आया है- क्योंकि ऐसा करने से बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन मिलता है। इसके विपरीत रचनाओं को सुधारकर छापने से बच्चे भाषा और छंद आदि के चक्कर में पड़ जाते हैं। इससे उनकी रचनाओं से 'बचपन' ख़त्म हो जाने की आशंका बन जाती है। समय की कमी के कारण चर्चा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाई।

चकमक के अलावा एकलव्य के अन्य कार्यक्रमों पर भी बातचीत हुई। चर्चा में सर्वश्री श्रीप्रसाद, विष्णुकांत पांडेय, मनोहर वर्मा, विनोदचंद्र पांडेय (सभी हिंदी) तथा रसिक पुत्तगे (कन्नड़) आदि ने प्रमुख रूप से भाग लिया।

ये सभी लेखक भारत भवन, द्वारा आयोजित एक अनुवाद कार्यशाला में भाग लेने भोपाल आए थे। इस कार्यशाला में हिंदी बाल साहित्य की रचनाओं का कन्नड़ में तथा कन्नड़ की रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया गया।

लेकिन लेखकों के भोपाल प्रवास के दौरान आयोजित सभी कार्यक्रमों में अफ़सोस की बात यह थी कि इनमें बच्चे कहीं भी प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं थे।

शरीफ़ा



शरीफ़ा या सीताफल तो तुम सभी ने कभी-न-कभी खाया ही होगा। शरीफ़े का पेड़ हमारे देश में हज़ारों सालों से उगता रहा है, और अब इस देश की जलवायु में इतना रच-बस गया है, कि यक़ीन ही नहीं होता कि मूलतः यह एक विदेशी पेड़ है। असल में यह पेड़ कहां से आया इसके बारे में कोई स्पष्ट मत नहीं मिलते हैं। परंतु ज़्यादातर संकेत इसी बात के हैं कि यह पेड़ दक्षिण अमेरिका और वेस्ट इंडीज़ जैसे गर्म क्षेत्रों का मूल निवासी है।

शरीफ़े का पेड़ मध्यम क़द (लगभग 15 से 20 फीट) का होता है और हमेशा हरा रहता है। इसके तने की छाल पतली और काले-भूरे रंग की होती है और उससे ऊपर डालों पर काफ़ी संख्या में छोटी-छोटी लटकती हुई टहनियां होती हैं। 2-4 साल से 12-15 साल की आयु तक पेड़ लगातार फल देता है।

इसके पत्ते पतझड़ में भी एक साथ नहीं झड़ते, इसलिए यह हमेशा हरा-भरा दिखाई देता है। पत्ते गहरे हरे रंग के, अंडाकार होते हैं। इन्हें मसलने पर एक ख़ास तरह की सुगंध निकलती है। ऊपरी छोर कभी नुकीले होते हैं कभी नहीं।

शरीफ़े के फूल हल्के हरे रंग के होते हैं और इनमें तीन मोटी-मोटी पंखुड़ियां होती हैं जो नीचे की ओर झुकी होती हैं। फूल गर्मी के मौसम में अकेले या समूह में खिलते हैं। फल वर्षा के समय लगने शुरू होते हैं और अगस्त से नवंबर के बीच पकते हैं। फल में हरी पपड़ियों का आवरण होता है और जब पपड़ियां किसी कारणवश थोड़ी काली पड़ने लगती हैं तो यह कछुए की खाल जैसा दिखाई पड़ता है। फल पकने पर पपड़ियों के बीच दरार पड़ने लगती है और ये अपने-आप गिरने लगते हैं। अंदर सुगंधित, मीठा, सफेद गूदा और गूदे के अंदर बहुत-से बड़े-बड़े, काले या गहरे भूरे बीज होते हैं।

शरीफ़े के फल पकने पर भी अगर तोड़े न जाएं तो वे गिर जाते हैं और उनके बीजों से ढेर सारे नए पौधे निकल आते हैं। ये पौधे आसानी से, बिना देख-रेख के ही पेड़ बन जाते हैं और सफ़ाई न करने पर कुछ सालों में ही वहां शरीफ़े का जंगल बन सकता है।

इस पेड़ की छाल, पत्ते, फल, बीज सभी स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। फल को खाने से पेट के रोगों से आराम मिलता है, ऐसा माना जाता है। पत्तियों और तने की छाल में एक कड़वा पदार्थ पाया जाता है जिसके कारण इसे भेड़-बकरी-गाय आदि जानवर नहीं खाते हैं। इसकी लकड़ी में कीटनाशक गुण भी पाए जाते हैं जिसकी वजह से इसमें दीमक नहीं लगती। लेकिन मुलायम होने के कारण यह कुछ ख़ास चीज़ें बनाने के काम ही आ पाती है। इसके बीज से भी कीटनाशक तेल और दवाएं बनाई जाती हैं। शरीफ़े की पत्तियों से



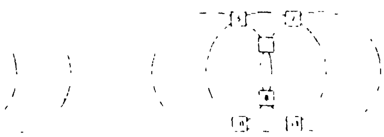
बने पुल्टिस से फोड़े-फुंसी पकाने का काम भी लिया जाता है।

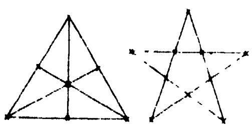
कुछ लोगों का मानना है कि शरीफ़ा खाने से बुखार होता है। यह महज़ एक वहम है। हां, कुछ-एक लोगों को यह शारीरिक रूप से रास नहीं आता है पर इससे फल की ख़राबी सिद्ध नहीं होती।

वैसे तो इस फल की ढेर सारी प्रजातियां पाई जाती हैं पर उनमें से सीताफल या शरीफ़ा ही सबसे अधिक प्रचलित है। अंग्रेज़ी में इसे अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे ***स्वीट ऐपल ट्री, कस्टर्ड ऐपल ट्री, स्वीट-सॉप ट्री*** *आदि।*

□□

माथापच्ची : हल अगस्त, 92 अंक के



2. 17, 19, 21, 23
3. 2 बजकर 7 मिनट
5. 
6. एक बच्चा नाव में बैठकर फौज वाले किनारे तक जाता है और उतर जाता है। एक सिपाही नाव लेकर दूसरे यानी बच्चों वाले किनारे पहुंच जाता है। अब दूसरा बच्चा नाव लेकर फौज वाले किनारे पर जाता है, पहले बच्चे को बिठाता है और दोनों दूसरे किनारे तक जाते हैं। एक बच्चा उतर जाता है।

   इसी प्रक्रिया को तब तक दोहराया जाता है जब तक कि एक-एक करके सारे सिपाही नदी के पार नहीं लग जाते।
7. तीन रंग
8. 40 कि.मी. प्रति घंटे का औसत बनाने के लिए साइकिल सवार को रास्ते की कुल दूरी (10 कि.मी.) 15 मिनट में तय करनी पड़ेगी। लेकिन साइकिल सवार ने 15 मिनट का समय तो आधी दूरी तय करने में ही लगा दिया है। अतः किसी भी हालत में वह 40 कि.मी. प्रति घंटे की औसत गति प्राप्त नहीं कर सकता।

सोचकर जवाब दो

1. बुझ जाएगा
2. पानी में
3. एक लंबी रस्सी का एक छोर तालाब के किनारे किसी पेड़ या बड़े पत्थर से बांध दो। दूसरे छोर को लेकर तालाब के किनारे-किनारे चारों ओर घूमकर वापस पहले छोर तक आओ। अब दोनों छोरों के बीच गांठ बांधकर खींच लो।

वर्ग पहेली-15 का हल

1 द	■	2 मा	■	3 अ	■	4 अं	5 ब	र
6 वा	ता	नु	कू	ल	न	■	डु	■
त	■	पी	■	वि	■	7 म	के	ल
■	8 मि	■	9 प्र	दा	10 न	■	व	■
11 नि	हा	रि	का	■	12 सि	ल	व	ट
■	ल	■	13 शी	14 त	म	■	र	■
15 पा	क	र	■	र	■	16 अ	■	17 ब
■	र	■	18 ह	क	ब	का	ह	ट
19 अ	ना	र	■	शा	■	ल	■	न

वर्ग पहेली-15 का कोई सर्वशुद्ध हल प्राप्त नहीं हुआ है। एक ग़लती वाले हल इन्होंने भेजे हैं- शत्रुघ्नलाल यादव, रजगामार, बिलासपुर। बिमला राठिया, टेरम, रायगढ़। मोहन पाटिल, डांडीवाड़ा, बैतूल। निक्की राठौर, भौंरा, बैतूल। लक्ष्मीप्रसाद राठिया कंवर, सिवनी, चांपा। आर.के. पुरी, मनेंद्रगढ़, सरगुजा, कु. रत्ना ढीमर, आठवीं, चिर्रा, बिलासपुर सभी मध्यप्रदेश। इन सभी को तीन माह तक चकमक उपहार स्वरूप भेजी जाएगी।

कहानी

बरखा आने वाली है!



उस दिन बंदर साहब सोकर कुछ देर से उठे। तब तक सूरज निकल आया था। उन्होंने कलाई घड़ी देखी जो आठ बजा रही थी। जल्दी-जल्दी वे बिछावन से उठे और कोट-पतलून पहनने लगे। गले में धारीदार टाई बांधी, सिर पर टोप लगाया, हाथ में छड़ी लटकाई और चश्मे का शीशा साफ़ करते हुए घर से बाज़ार की ओर निकल पड़े। अभी कुछ ही दूर गए होंगे कि पीछे से बंदरिया दौड़ती आई और बोली, "छाता लेना तो भूल ही गए आप!"

बंदर ने आंखों पर चश्मा चढ़ाते हुए आसमान की ओर देखा। आसमान बिल्कुल साफ़ था। बादलों का कोई बच्चा भी कहीं दिखाई न पड़ा। सूरज आधी पलकें खोल धीरे-धीरे मुस्कुरा रहा था। बंदर साहब हंसे और बोले, "बंदरिया रानी, अभी तो न तेज़ धूप है और न बरखा की आशा। फिर क्या होगा छाता ले जाकर?"

"कैसी बातें करते हो जी!" बंदरिया कहने लगी, "सुना नहीं, आज बरखा आने वाली है।"

"बरखा आने वाली है? तुमसे किसने कहा? मुझे तो बरखा का कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ता," बंदर ने कहा।

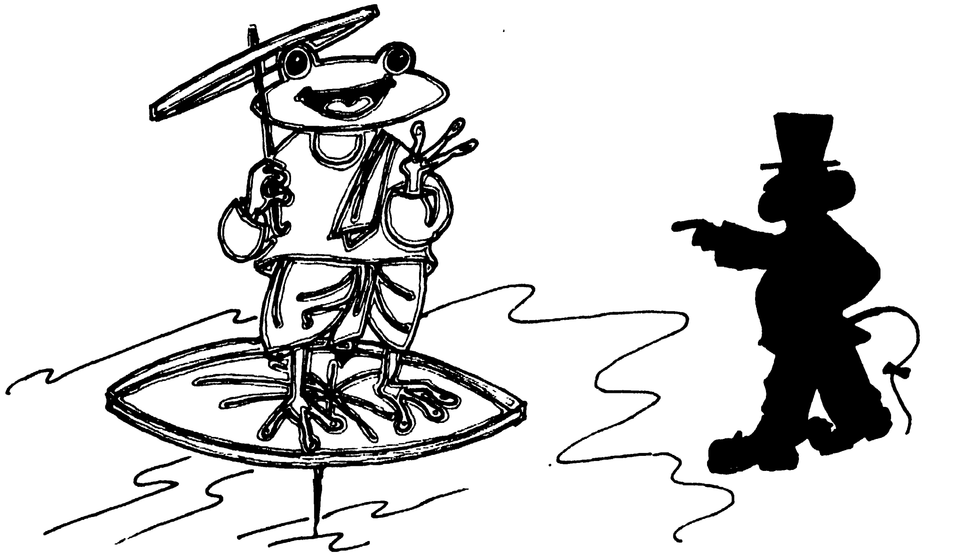
"सारे शहर में इस बात की चर्चा है कि आज बरखा आने वाली है।" बंदरिया बोली और बंदर के हाथों में छाता पकड़ाने लगी।

बंदर साहब को गुस्सा आ गया। बोले, "तुम न सोचती हो, न समझती हो, चट दूसरों की बातों में आ जाती हो। साफ़ मौसम में छाता लेकर चलूं तो लोग क्या कहेंगे मुझे? घर जाओ और रख दो छाता कमरे में?"

बंदर साहब जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते आगे बढ़ चले और बंदरिया देखती रह गई। अभी वे थोड़ी ही दूर आगे बढ़े कि भेड़िया दरज़ी बेतहाशा भागता दिखाई पड़ा। भेड़िया दरज़ी अपने सारे कपड़े समेट कर बाज़ार से घर की ओर भागा आ रहा था। बंदर साहब ने उसे रोककर पूछा, "क्यों मास्टर, आज इतनी जल्दी क्यों लौटे आ रहे हो?"

"सुना नहीं आपने? अरे साहब, आज बरखा आने वाली है, बरखा। काम क्या होगा आज? सारे कपड़े भीग जाएंगे।" इतना कहते-कहते भेड़िया दरज़ी भाग खड़ा हुआ। बंदर साहब कुछ और पूछना चाहते थे पर पूछ नहीं पाए।

टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों से होकर वे बाज़ार की ओर चलते रहे। राह में कहीं उन्हें कोई दिखाई न पड़ा। सभी दरवाज़े अंदर से बंद थे। बंदर साहब जब बाज़ार पहुंचे तो उनके अचरज का ठिकाना न रहा। बाज़ार की सारी दुकानें बंद थीं। वहां न कोई दुकानदार था, न ख़रीददार।



बंदर साहब ने बार-बार चारों ओर नज़र दौड़ाई। पर वहां कोई दिखाई नहीं पड़ा। हां, निकट के तालाब से उन्हें मेंढक धोबी के गाने की आवाज़ सुनाई पड़ी। वे तालाब की ओर लपके। वहां पहुंचकर उन्होंने देखा कि बीच तालाब में एक कमल के पत्ते पर मेंढक धोबी खड़ा है। उसने कमल के पत्तों का ही छाता ओढ़ लिया है और बड़ी मस्ती में गाए जा रहा है-टर्र टों, टर्र टों, टर्र टों..........

बंदर साहब को अपनी ओर आते देखकर मेंढक धोबी बोला, "हुज़ूर, आज कपड़े नहीं धुल पाएंगे। सारा काम बंद रहेगा आज। आपने तो सुना ही होगा कि आज बरखा आने वाली है। ऐसे मौसम में आप निकले कैसे?"

"लेकिन तुमसे किसने कहा कि बरखा आने वाली है?" बंदर साहब ने सवाल किया।

"मुझसे तो भैंसा पहलवान ने कहा। "हुज़ूर। अगर आपको विश्वास न हो तो जाकर उसी से पूछ लीजिए।" इतना कहकर मेंढक धोबी फिर झुक-झुक कर टर्र-टों, टर्र टों गाने लगा और बंदर साहब भैंसा पहलवान के घर की ओर चल पड़े।

भैंसा पहलवान अपने घर के बाहर बरगद के नीचे बैठा बरखा की राह देखते-देखते पागुर करने लगा था। बंदर साहब को सामने देखकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "नमस्ते साहब। आज बरखा में कैसे निकल पड़े? छाता भी नहीं लिया?"

बंदर साहब बोले, "तुम लोगों का दिमाग़ ठिकाने है या नहीं? देखते नहीं आसमान बिलकुल साफ़ है। बरखा होगी तो कैसे?"

"यह तो नहीं जानता सरकार", भैंसा कहने लगा, "मुझसे तो सूअर नाई ने यह बात कही थी।"

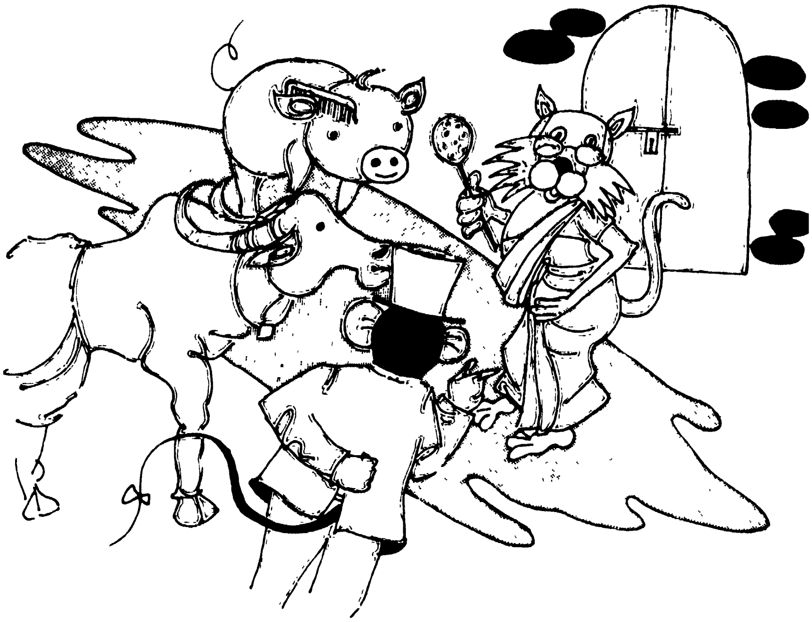
भैंसा पहलवान और बंदर साहब सूअर नाई के घर की ओर चल पड़े। सूअर नाई अपने घर के बाहर सड़क पर अपने सारे बाल-बच्चों के साथ धूल में लोट-पोट कर रहा था। बंदर साहब और भैंसा पहलवान को अपनी ओर आते देख कर उठ खड़ा हुआ और झुक-झुक कर सलाम बजाने लगा। वह बोला, "बरखा आने से पहले आप लोग कैसे आ धमके? आज मुझे क्षमा कीजिए। बरखा का आनंद लेने के लिए आज मैंने अपनी सैलून बंद कर रखी है।"

"लेकिन तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि आज बरखा आने वाली है?" भैंसा पहलवान ने सूअर नाई से सवाल किया।

"मुझसे तो सुबह-सुबह बिल्ली मौसी कह गई थी।"

"तो चलें बिल्ली मौसी से ही पूछा जाए। हर घर का हाल तो उसे ही मालूम है।" बंदर साहब ने सलाह दी।

सूंघते-सूंघते सूअर नाई बिल्ली मौसी के घर की ओर चल पड़ा। उसके पीछे-पीछे बंदर साहब



और भैंसा पहलवान चलने लगे।

बिल्ली अंदर से अपना दरवाज़ा बंद कर गरम-गरम पकौड़ियां तल रही थी। सूअर नाई ने दरवाज़ा खटखटाया। बिल्ली मौसी हाथ में झारा लिए बाहर निकली। उसने सबको बड़े प्रेम से गरम-गरम पकौड़ियां चखने को दीं। सबने पकौड़ियों की ख़ूब प्रशंसा की।

बिल्ली मौसी बोली, "यह मौसम तो घर में ताज़ा-ताज़ा खाना खाने और मज़े में चादर तानकर सोने का है। ऐसे मौसम में आप लोग घर से निकले कैसे?"

बंदर साहब हंसे और बोले, "तुम तो अंधी नहीं हो बिल्ली मौसी? माना कि दिन में तुम्हें कम दिखाई पड़ता है परंतु चश्मे के अंदर से झांक कर तो तुम हर घर की ख़बर रखती हो। तुम भी बिना सिर-पैर की बातें कब से करने लगीं? देखती हो कि आसमान बिल्कुल साफ़ है। फिर आज के मौसम को बारिश का मौसम कैसे कह रही हो?"

"तुम तो यह बताओ, तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि आज बरखा होने वाली है?" भैंसा पहलवान ने पूछ ही लिया आख़िर।

बिल्ली बोली, "जब मैं सुबह-सुबह घूमने निकली तो खरगोश और उनकी पत्नी आपस में बातें करते जा रहे थे कि आज बरखा आने वाली है, वह ज़रूर आएगी। खरगोश दंपति इस शहर के सबसे अच्छे लोग हैं। मैं कैसे उनका विश्वास नहीं करती?"

सूअर नाई बोला, "अच्छा होगा हम सब चल कर उन्हीं से पूछ लें। वहीं सच्ची बात का पता चल जाएगा।"

सब के सब खरगोश महोदय के दरवाज़े पर पहुंचे। खरगोश जी आराम कुर्सी पर बैठे अख़बार पढ़ रहे थे। और उनकी पत्नी पास में मोढ़े पर बैठीं स्वेटर बुन रही थीं। कई लोगों को एक साथ आते देखकर खरगोश जी अचरज में पड़ गए। उन्होंने उठकर सबका स्वागत किया और बोले, "क्यों बंदर साहब, सब कुशल तो है?"

"हां भाई, सब कुशल है। एक बात पूछने के लिए आप को कष्ट दिया।" बंदर साहब ने बात आगे बढ़ाई।

"इसमें कष्ट की क्या बात है? कहिए, क्या सेवा करूं आप लोगों की?" खरगोश ने विनम्रता दिखाई।

बंदर साहब कहने लगे, "क्या यह बात सही है कि आप अपनी पत्नी से चर्चा कर रहे थे कि आज बरखा आने वाली है?"

"हां, हां, कर तो रहा था। आज सचमुच बरखा आने वाली है। अभी हम यहां धूप में बैठे उसी

की राह देख रहे हैं। अब वह आती ही होगी। इसी गाड़ी से आने वाली है बरखा।"

"इसी गाड़ी से आने वाली है बरखा?" भैंसा पहलवान की आंखें अचरज से तन गईं।

"आप लोग धूप में बैठकर बरखा की राह देख रहे हैं?" इतना कहते-कहते सूअर नाई धम्म से धरती पर बैठ गया।

"लेकिन इसमें अचरज की क्या बात है? वह देखिए बरखा आ भी गई।" खरगोश ने पूरब की ओर इशारा किया और सब के सब उत्सुकता से उसी ओर देखने लगे।

बिल्ली मौसी ने अपना चश्मा ठीक किया। बंदर साहब ने आंखों पर हाथ रखकर दूर-दूर तक देखा। भैंसा पहलवान ने आसमान से ज़मीन तक नज़र दौड़ाई। सूअर नाई ने कुछ इधर-उधर टहल-घूमकर भी देखा। परंतु किसी को कहीं बरखा दिखाई नहीं पड़ी। सब के सब एक साथ चिल्लाए, "क्या कहते हैं आप? कहां है बरखा? हमें तो कहीं दिखाई नहीं देती।"

खरगोश की पत्नी से चुप न रहा गया। वे बोलीं, "अरे साहब, आप लोगों को कैसे दिखाई नहीं देती? देखिए तो सही, कैसे उछलती-कूदती, फुदकती-फुदकती चली आ रही है मेरी बरखा रानी।"

"लेकिन वह तो आपकी बेटी है?" सूअर नाई बोला।

"हां-हां, वही तो है मेरी बेटी, बरखा। जब वह जन्मी थी, ज़ोरों की बरखा बरस रही थी और इसलिए हम लोगों ने उसका नाम बरखा रख दिया।"

सभी जानवर टुकुर-टुकुर देख रहे थे और खरगोश जी कहते जा रहे थे, "सुबह-सुबह हम अपनी इसी बिटिया की चर्चा तो कर रहे थे कि आज बरखा आने वाली है।"

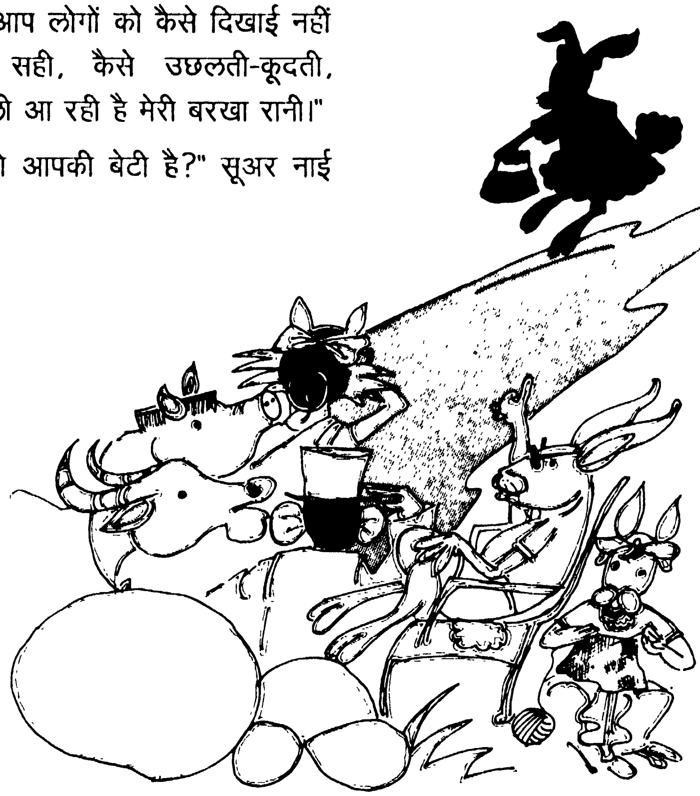
खरगोश दंपति अपनी नन्हीं-मुन्नी बिटिया बरखा रानी को एकटक निहारने लगे जो उन्हीं लोगों की ओर उछलती-कूदती चली आ रही थी।

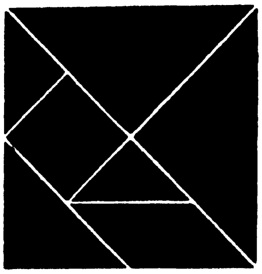
भैंसा पहलवान मारे शरम के ज़मीन की ओर देखने लगा। सूअर नाई धरती पर लोट पोट हो गया। बंदर साहब मुस्कुरा रहे थे और कनखियों से बारी-बारी सब को देखते भी जा रहे थे। बिल्ली मौसी आंचल की ओट में मुंह छिपाकर हंस रही थी।

तभी बरखा ने आकर सबको नमस्ते किया और उछल कर मां की गोद में जा बैठी।

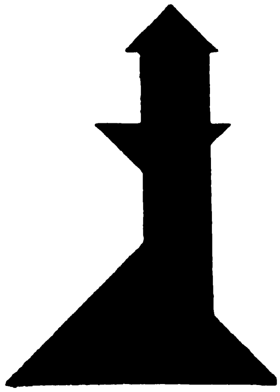
उधर पोखरे से अभी भी लगातार आवाज़ आ रही थी-टर्र-टों, टर्र-टों, टर्र-टों।

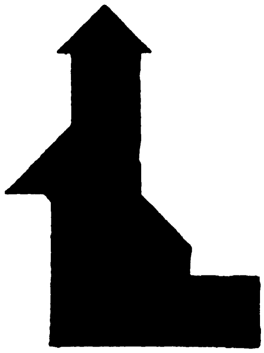
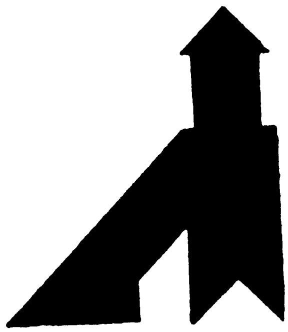
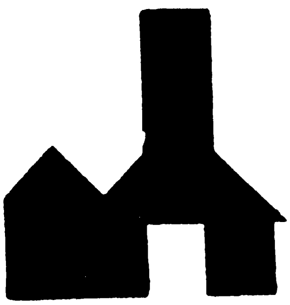
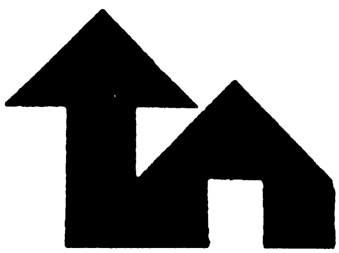
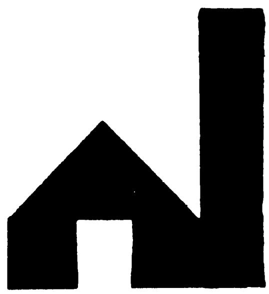
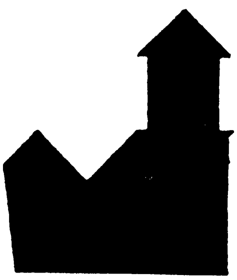
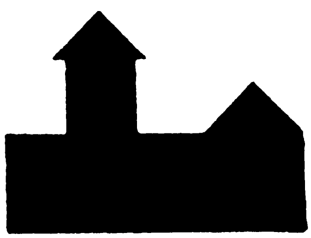
❑ विष्णुकांत पाण्डेय



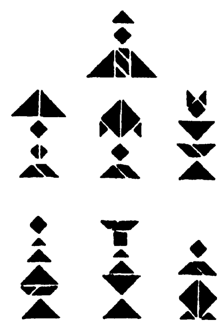


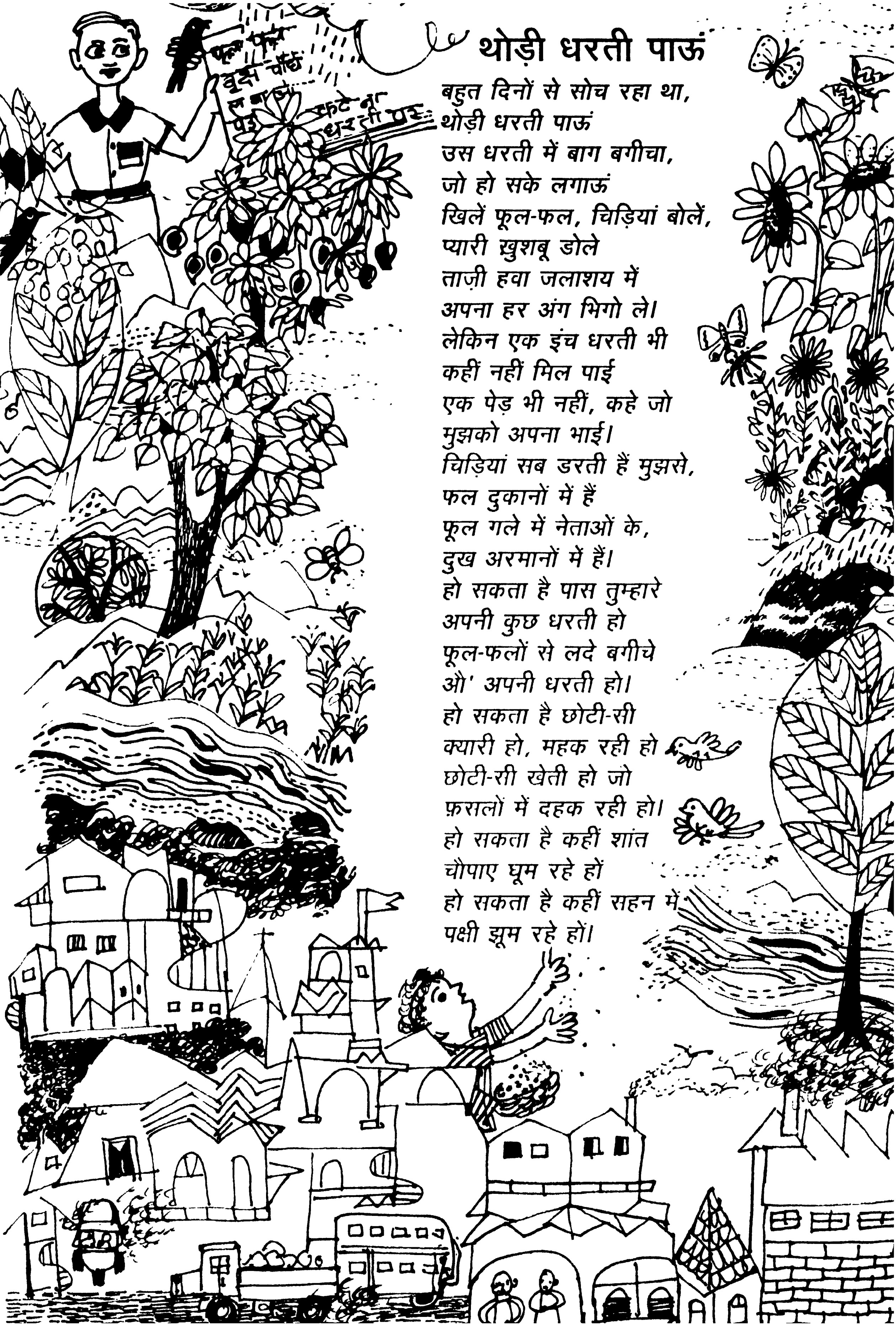
टेनग्राम के इन सात टुकड़ों को जोड़कर यहां दी गई विभिन्न आकृतियां बनी हैं। तुम भी बना देखो। (हल अगले अंक में)



हल अगस्त, 92 अंक के





थोड़ी धरती पाऊं

बहुत दिनों से सोच रहा था,
थोड़ी धरती पाऊं
उस धरती में बाग बगीचा,
जो हो सके लगाऊं
खिलें फूल-फल, चिड़ियां बोलें,
प्यारी ख़ुशबू डोले
ताज़ी हवा जलाशय में
अपना हर अंग भिगो ले।
लेकिन एक इंच धरती भी
कहीं नहीं मिल पाई
एक पेड़ भी नहीं, कहे जो
मुझको अपना भाई।
चिड़ियां सब डरती हैं मुझसे,
फल दुकानों में हैं
फूल गले में नेताओं के,
दुख अरमानों में हैं।
हो सकता है पास तुम्हारे
अपनी कुछ धरती हो
फूल-फलों से लदे बगीचे
औ' अपनी धरती हो।
हो सकता है छोटी-सी
क्यारी हो, महक रही हो
छोटी-री खेती हो जो
फ़सलों में दहक रही हो।
हो सकता है कहीं शांत
चौपाए घूम रहे हों
हो सकता है कहीं सहन में
पक्षी झूम रहे हों।

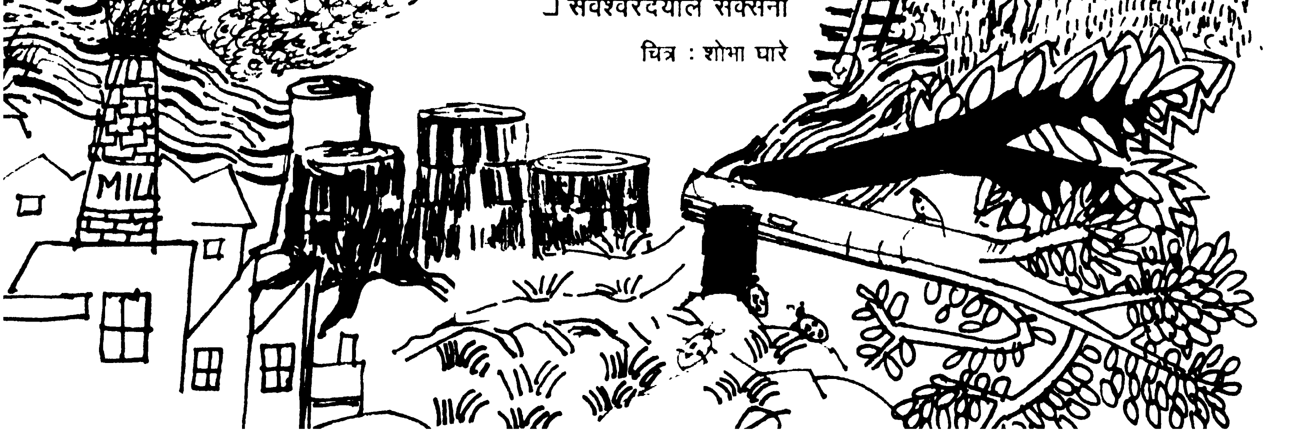




तो विनती है यही, कभी मत
उस दुनिया को खोना
पेड़ों को मत कटने देना,
मत चिड़ियों को रोना।
एक-एक पत्ती पर हम सबके
सपने सोते हैं
शाखें कटने पर वे भोले,
शिशुओं-सा रोते हैं।
पेड़ों के संग बढ़ना सीखो,
पेड़ों के संग खिलना
पेड़ों के संग-संग इतराना,
पेड़ों के संग हिलना।
बच्चे और पेड़ दुनिया को
हरा-भरा रखते हैं
नहीं समझते जो, दुष्कर्मों
का वे फल चखते हैं।
आज सभ्यता वहशी बन,
पेड़ों को काट रही है
ज़हर फेफड़ों में भरकर
हम सबको बांट रही है।
इसीलिए था सोच रहा
अपनी कुछ धरती होती
तो मैं गूंथ-गूंथकर देता
तुमको उसके मोती।
लेकिन अब काले अक्षर की
कोयल भेज रहा हूं
जी भर संग कूकना इसके
स्वर कर तेज़ रहा हूं।

❏ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

चित्र : शोभा घारे





क्यों.... क्यों-23

मुनिया की चचेरी बहन बाली उसके घर आई थी। दोनों बहनें अभी-अभी खाना खाकर उठी थीं। मां ने कहा, "चलो, थोड़ी देर सो लो।"

वो दोनों लेट तो गईं पर आंखों में नींद कहां? बाली ने कहा, "मुनिया, कोई कहानी सुनाओ न।"

"कहानी? दिन में? नहीं, मां कहती हैं दिन में कहानी सुनाने से मामा रास्ता भूल जाते हैं।" हमेशा क्यों का सवाल खड़ा करने वाली मुनिया ने ही जब ऐसा कहा तो बाली उसका मुंह ताकने लगी।

कुछ सोचते हुए बाली ने कहा, "पर मामा रास्ता क्यों भूल जाते हैं? और हां, मामा से याद आया। हमारे गांव में पिछले माह जो नाव डूब गई थी, उसके बारे में लोग कहते हैं कि उस नाव में मामा-भानजे साथ-साथ बैठे थे।"

"दिन में कहानी सुनाने से या नदी में नाव के डूबने से मामा का क्या संबंध हो सकता है........?"

"और क्यों?" दोनों एक साथ बोल पड़ीं।

तुम्हारे लिए भी इस बार यही प्रश्न है कि **दिन में कहानी सुनाने से मामा रास्ता भूल जाते हैं और नाव में मामा-भानजे एक साथ बैठें तो नाव डूब सकती है, ऐसा क्यों कहा जाता है?** अपने जवाब हमें **15 नवंबर तक** भेज देना।

क्यों.....क्यों.....18 : उत्तर

क्यों.... क्यों..... 18 में पूछा गया प्रश्न तो तुम्हें मालूम ही है। सवाल कुछ इस तरह थे कि कौआ किसी के सिर पर बैठ जाए या चोंच मार दे तो ऐसा समझा जाता है, कि उसके घर में किसी की मौत होने वाली है। कौआ जब घर के सामने या छत पर बैठकर बोलता है तो समझा जाता है कि कोई मेहमान आने वाला है। कहते हैं कौआ काना होता है। इन सब मान्यताओं के बारे में तुम्हारी राय क्या है और ये कौए के बारे में ही क्यों हैं?

इन सवालों के जवाब कई पाठकों ने हमें भेजे हैं। अधिकतर ने यही लिखा है कि कौए के बारे में प्रचलित धारणाएं ग़लत हैं। कुछ पाठकों ने कौए के घर की छत पर बैठकर बोलने से मेहमान आने की बात को सही लिखा है, क्योंकि उन्होंने इसे आज़मा कर देखा है कि कौए के बोलने के बाद उनके यहां मेहमान आए। इसके बारे में हम तो यही कहेंगे कि यह एक संयोग की बात भी हो सकती है। रही बात कौए के काने होने की तो कौए की भी अन्य पक्षियों की तरह दो आंखें होती हैं। उसे काना कहने का कारण शायद यह है कि जब कौआ सिर घुमाकर किसी चीज़ को देख रहा होता है तब हमें उसकी एक आंख ही दिखाई पड़ती है।

ध्यान रहे यह ज़रूरी नहीं है कि हर पुरानी प्रथा, परंपरा या रीतिरिवाज़ दकियानूसी ही हो, उसके पीछे कोई तार्किक आधार भी हो सकता है। आधार एक या एक से अधिक भी हो सकते हैं। पर यह भी आवश्यक नहीं है कि हर परंपरा या प्रथा के पीछे आधार होगा ही।

तुमने कौए के बारे में और भी बातें सुनी होंगी। सारी बातों को ध्यान में रखो या चाहो तो एक सूची तैयार कर लो। फिर बारी-बारी उन सबका निरीक्षण करो। देखो, कितनी बार घर की छत पर कौआ बोला। क्या हर बार मेहमान आए? कौए ने किसी को चोंच मारी या सिर पर बैठ गया तो उसके बाद क्या हुआ। और अबकी बार जब भी कौआ देखो तो ध्यान से उसकी आंखें ज़रूर देखना। जो भी देखो, समझो हमें भी लिखना।

जिन पाठकों ने जवाब भेजे-

सत्येंद्र सिह रघुवंशी, हरदा। विजय जायसवाल, हाटपीपल्या, देवास। ऋषि कुमार साहू, जारा, रायपुर। प्रभात कुमार श्रीवास्तव, जैथारी। सीताराम मरमट, सुंद्रेल, देवास। कुबेर शरण द्विवेदी, छपड़ौर, शहडोल। संजय कुमार तिवारी, विजयराहतगढ़, जबलपुर। **मध्यप्रदेश**। भवानी सिंह, मुकेश कुमार टांक, उषा कोठारी, घाणेराव, पाली। सुगनराम गौड़, प्रेमसिंह देवड़ा, अनुराग बी. शर्मा, मनमोहन चौधरी, मोतीलाल गौड़, ललित, प्रमोद गौड़, जगदीश भटनागर, केसाराम सोनल, सभी देसूरी, पाली। **राजस्थान**। प्रेम कुमार, कंकड़बाग, पटना, **बिहार**। मनोज कुमार मिश्र, पूरे नैपाल मिश्र, फ़ैज़ाबाद, **उत्तर प्रदेश**।

मिट्टी से काग़ज़ तक

लिखने के बारे में खोजबीन करते समय यह भी पता चला कि जिस काग़ज़ पर हम आजकल लिखते हैं, जो हमें इतनी आसानी से मिल जाता है, वह हमेशा से नहीं था। दरअसल लिखने की शुरूआत के बाद जैसे-जैसे 'लिखने' का उपयोग बढ़ता गया वैसे-वैसे लिखने के लिए नए-नए, ज़्यादा अच्छे और टिकाऊ माध्यम खोजे जाने लगे। पहले लोग मिट्टी, पत्थर, चमड़ा, धातु, पैपीरस आदि का उपयोग करते थे। हमारे देश में भी भोजपत्र और ताड़पत्रों पर लिखा जाता था। सारे माध्यम धीरे-धीरे विकसित हुए। मिट्टी से आज के काग़ज़ तक पहुंचने की यात्रा भी 'लिखने' की कहानी से कम रोचक नहीं है।

लिखने के लिए मुख्यतः मिट्टी, चमड़ा और पैपीरस आदि का बहुत उपयोग किया गया। पत्थर का इस्तेमाल ज़्यादातर शासकों ने उन पर अपने लेख आदि खुदवाने के लिए किया। भारत में अशोक के साम्राज्य के समय और फिर उसके बाद के सैकड़ों शिलालेख मिलते हैं। इनमें से अधिकांश पर राजाओं की प्रशंसा लिखी गई है। पर कुछ शिलास्तंभों पर पुस्तकें भी लिखी मिलती हैं।

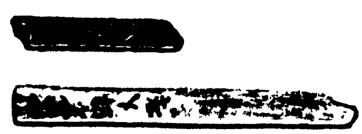
धातुओं में तांबा, चांदी, सोना, कांसा आदि का लिखने के लिए इस्तेमाल हुआ है। पीतल की कुछ पुरानी मूर्तियों पर खुदे हुए लेख मिलते हैं। कांसे के घंटों पर भी संक्षिप्त लेख मिलते हैं। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास खड़े लौहस्तंभ पर खुदी हुई छह पंक्तियों का एक लेख है। सोने और चांदी के पत्र पर भी कुछ लेख मिले हैं। लेकिन धातुओं में लेखन के लिए तांबे का सबसे अधिक उपयोग हुआ है। वैसे अन्य माध्यमों की तुलना में धातु पर लिखना काफी महंगा होता होगा, इसलिए इसका इस्तेमाल बहुत अधिक मात्रा में या बहुत लंबे समय तक नहीं हुआ है।

मिट्टी

ऐसा माना जाता है कि लिखने के माध्यम के रूप में सबसे पहले मिट्टी का ही उपयोग हुआ। पुरातत्ववेत्ताओं (पुरानी चीज़ों की खोजबीन करने वाले लोगों) को मेसोपोटामिया (आज का दक्षिण इराक) में खुदाई के दौरान एक राजप्रासाद में विशाल पुस्तकालय मिला, जिसमें बीस हज़ार पुस्तकें थीं। वहां हुए अग्निकांड में प्रासाद तो जल गया, मगर पुस्तकालय सुरक्षित बच गया क्योंकि पुस्तकें मिट्टी से बनी हुई थीं। वहां के निवासी गीली मिट्टी की पाटियों पर लिखते थे। इन पाटियों को बाद में सुखा लिया जाता था या आग में पका लिया जाता था। पहले-पहल मेसोपोटामियावासी चित्रलिपि का प्रयोग करते थे। किंतु गीली मिट्टी की पाटी पर खरोंचकर चित्र बनाना कठिन होता था। इसलिए आगे चलकर इन पाटियों पर नुकीली कलम से लिपि के संकेत उकेरे जाने लगे। बाद में इन्हीं पाटियों को सुखा लिया जाता था। पाटियों पर अंकित ये अक्षर कील के आकार के दिखाई देते हैं, इसलिए इन्हें कीलाक्षर भी कहा जाता है। बाद में लिखने की यह पद्धति सारे पश्चिम एशिया में फैल गई।

यूनानी लोग भी मिट्टी की पाटी के अलावा मोम पुती लकड़ी की पाटियों पर भी लिखते थे। हमारे यहां भी लकड़ी पर खरोष्ठी लिपि में लिखे गए लेख मिले हैं। यहां तक कि बांस पर भी लेखन कार्य हुआ है। यात्रा पर निकले चीनी विद्वान बांस की पट्टियों पर लिखी किताबें अपने साथ लेकर चलते थे।

हमारे देश में सिंधु सभ्यता के जो संक्षिप्त लेख मिले हैं वे सेलखड़ी, हाथीदांत या चीनी मिट्टी पर लिखे गए हैं। कुछ लेख मिट्टी के बर्तनों पर भी मिले हैं।



बांस की पट्टियों पर प्राचीन चीनी लेख।

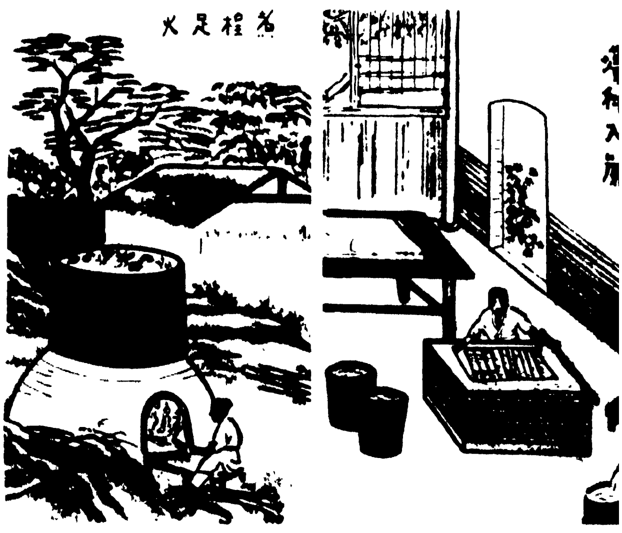


पैपीरस और काग़ज़

आज से क़रीब पांच हज़ार साल पहले प्राचीन मिस्र में पैपीरस पौधे के तने के बीच के हिस्से से एक प्रकार का काग़ज़ बनाया गया। काग़ज़ का अंग्रेज़ी शब्द 'पेपर' भी पैपीरस से ही बना है।

पैपीरस पानी में उगने वाला एक पौधा है। मिस्र में नील नदी के किनारों पर यह उगता था। पैपीरस का तना एक प्रकार का सरकंडा होता है। काग़ज़ बनाने के लिए पहले इसके तने को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता था। फिर उसके ऊपर के सख़्त छिलके को छीलकर अंदर के नरम हिस्से की पतली-पतली पट्टियां काट ली जाती थीं।. फिर एक चपटे पत्थर पर इन पट्टियों की दो परत बिछाई जातीं। एक परत खड़ी पट्टियों की और दूसरी परत आड़ी पट्टियों की। फिर इन परतों पर एक कपड़ा बिछाकर लकड़ी के हथौड़े से तब तक कूटा जाता, जब तक दोनों परतें मिलकर एक न हो जाएं। फिर इस परत को किसी भारी वज़न से दबाकर कुछ समय के लिए छोड़ दिया जाता था। जब यह बिलकुल सपाट बन जाती और सूख जाती तब किसी लुड़िया (गोल-मटोल पत्थर) से रगड़कर इसे चिकना कर लिया जाता था। इन टुकड़ों को ही लिखने के लिए काम में लाया जाता था।

जिसे हम आज काग़ज़ कहते हैं, वह सबसे पहले सन् 105 के आसपास चीन में बना। चीन में उन दिनों हैन नामक एक राजा का साम्राज्य था। उसके एक दरबारी त्साई लून को काग़ज़ के आविष्कार का श्रेय जाता है। वह काग़ज़ बनाने के लिए शहतूत के पेड़ की छाल, पुराने कपड़े के चीथड़े, मछली पकड़ने की जाली, घास, पटसन आदि को एक साथ पानी में गलाकर, कूट लेता था। फिर उसमें कलफ मिलाता था। काग़ज़ को सफ़ेद बनाने के लिए खड़िया मिलाता या रंगीन बनाने के



प्राचीन चीन में काग़ज़ बनाने का तरीक़ा। बाएं : कड़ाह में लुगदी तैयार की जा रही है। दाएं : नली से बहकर आती लुगदी से काग़ज़ बनाया जा रहा है।

लिए रंग। फिर वह उस गाढ़े घोल को महीन छन्नी से छानता ताकि अतिरिक्त पानी निकल जाए। छानने पर काग़ज़ की पतली-सी परत छन्नी के ऊपर जमी रह जाती। फिर इसे सपाट बनाकर, पत्थर से घिसकर चिकना कर लेता।

लगभग पांच सौ साल तक काग़ज़ बनाने की इस तरक़ीब को चीन से बाहर नहीं जाने दिया गया। सातवीं शताब्दी तक आते-आते जापानियों ने भी यह तकनीक सीख ली। सातवीं शताब्दी के बाद यह तकनीक कई और देशों में भी पहुंच गई। एक प्रचलित कहानी के अनुसार सन् 751 में चीन ने ताशकंद और अफगानिस्तान के बीच बसे प्राचीन समरकंद शहर पर हमला किया। उस समय वहां अरबों का राज था। अरबों ने कुछ चीनियों को बंदी बना लिया। इनमें से कुछ काग़ज़ बनाना भी जानते थे। अरबों ने इनसे काग़ज़ बनाना सीखा। चौदहवीं शताब्दी में यह तकनीक एशिया से होती हुई यूरोप जा पहुंची।

चर्मपट या पार्चमेंट

मिस्र के आसपास के देशों में लिखने के लिए पैपीरस से पहले चमड़े का इस्तेमाल किया जाता था। ई.पू. दूसरी शताब्दी के आसपास चमड़े को लिखने के अधिक योग्य बनाने के लिए एक तरीक़ा खोजा गया।

भेड़-बकरी आदि की खाल इस काम में उपयोग की जाती थी। पहले खाल को धोया जाता ताकि उसके बाल या ऊन निकल जाएं। फिर उसे किसी लकड़ी के फ्रेम पर तानकर खुरचा जाता ताकि बचे-खुचे ऊन या बाल भी निकल जाएं। इसके बाद चमड़ी पर खड़िया रगड़कर उसे सफ़ेद बनाया जाता और पत्थर से रगड़कर चिकना किया जाता। इस तरह तैयार चमड़े को पार्चमेंट कहा जाता था। नरम खाल से जो पार्चमेंट बनता था उसे वेल्लम कहते थे और वह बहुत क़ीमती हुआ करता था।

पार्चमेंट की ख़ासियत यह थी कि इसे पैपीरस से ज़्यादा बड़े आकार में तैयार किया जा सकता था। यह पैपीरस और उससे भी पहले इस्तेमाल किए जाने वाले चमड़े, दोनों से ही ज़्यादा लचीला और टिकाऊ था। पार्चमेंट से पहले की चीज़ों पर चूंकि एक ही तरफ लिखना संभव था, इसलिए उन्हें आमतौर पर लपेटकर रखते थे। लेकिन पार्चमेंट पर दोनों तरफ लिखा जा सकता था। और तभी से ऐसी कॉपियों का चलन शुरू हुआ, जिनका हम आजकल इस्तेमाल करते हैं।

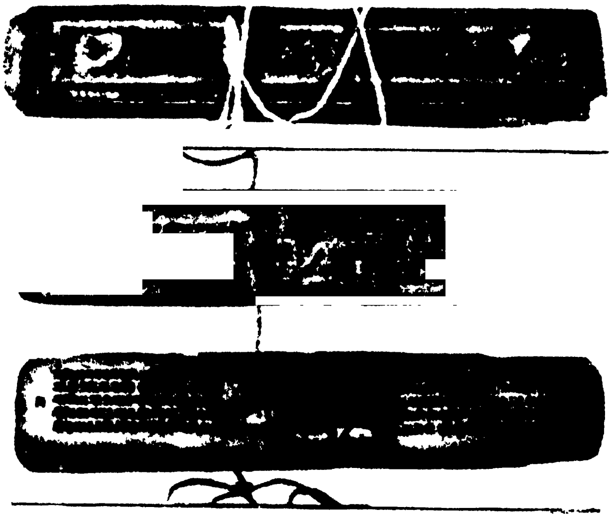
भोजपत्र और ताड़पत्र

ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि भारत में भी काग़ज़ की जानकारी थी। लेकिन हमारे देश में काग़ज़ पर लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें नहीं मिलतीं। जो किताबें मिलीं भी हैं वे दसवीं सदी के बाद की हैं।

काग़ज़ की जानकारी होने पर भी आरंभ में इसका इस्तेमाल इसलिए नहीं हुआ क्योंकि उस समय हाथ से बने काग़ज़ पर स्याही बड़ी आसानी से फैल जाती थी। इसलिए भारत के लेखक मुख्यतः ताड़पत्रों और भोजपत्रों पर ही लिखते रहे। वैसे यूनानी लेखकों के विवरणों से जानकारी मिलती है कि ईसा पूर्व चौथी सदी में भारत के लोग रूई को कूटकर काग़ज़ बनाते थे। परंतु भारत के प्राचीन साहित्य में ऐसे काग़ज़ के बारे में जानकारी नहीं मिलती है।

हिमालय-प्रदेश में भूर्ज नामक वृक्ष बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। भोजपत्र इसी वृक्ष की छाल से तैयार किए जाते थे। क़रीब एक मीटर लंबी छाल को काटकर इसे तेल लगाकर शंख आदि से ख़ूब घोटा जाता था। जब भोजपत्र चिकना हो जाता, तो लेखक सुविधानुसार इसे काट लेते थे। भोजपत्र के बीच में छेद बनाकर डोरी डालने के लिए जगह छोड़ दी जाती थी। कई पत्रों के बीच में डोरी डालकर ऊपर-नीचे लकड़ी की तख्तियां जोड़ देने से भोजपत्रों की पुस्तक तैयार हो जाती थी।

खुली हवा में भोजपत्र अधिक दिनों तक नहीं टिक पाते, इसलिए भोजपत्रों पर लिखी हुई अधिक प्राचीन पुस्तकें नहीं मिली हैं। भोजपत्रों की प्राचीन पुस्तकें मुख्यतः बौद्ध स्तूपों से मिली हैं। खोतन (मध्य एशिया) से मिली हुई प्राकृत धम्मपद की पुस्तक, जो भोजपत्रों पर खरोष्ठी लिपि में लिखी गई है, ईसा की दूसरी सदी की है। भोजपत्रों पर लिखी हुई अधिकांश उपलब्ध पुस्तकें मुश्किल से छह-सात सौ



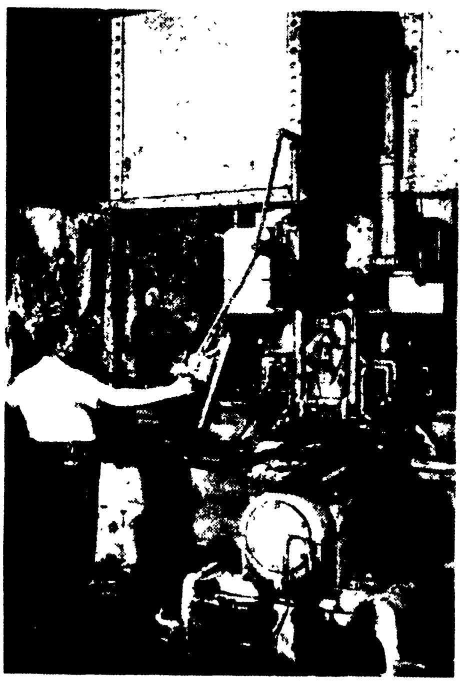
ताड़पत्र पर लिखा एक दस्तावेज।

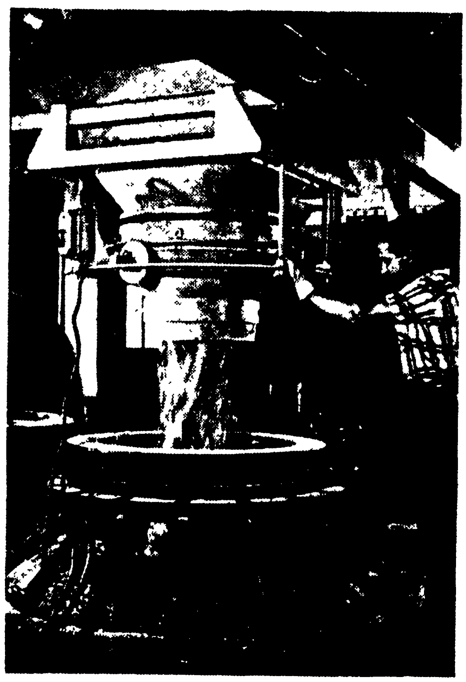
साल पुरानी हैं।

ताड़पत्र का भी यही हाल है। यह गर्म प्रदेश में अधिक दिनों तक नहीं टिक पाता। यही कारण है कि दक्षिण भारत में ताड़पत्रों पर अधिक पुस्तकें लिखी जाने पर भी ताड़पत्रों की अधिक पुरानी हस्तलिपियां हमें नेपाल और तिब्बत से मिली हैं। जापान के होर्युजी विहार में रखी हुई 'उष्णीषविजय-धारणी' नामक हस्तलिपि, जो 600 ई. के आसपास की भारतीय लिपि में लिखी गई है, ताड़पत्रों पर है। नेपाल और तिब्बत से ताड़पत्रों पर लिखी हुई अनेक पुस्तकें मिली हैं।

दक्षिण भारत में पाए जाने वाले ताड़ के पेड़ के पत्तों से ताड़पत्र तैयार किए जाते थे। ये ताड़पत्र काफ़ी बड़े होते हैं। पहले इन ताड़पत्रों को सुखा लिया जाता था। फिर इन्हें पानी में भिगोया जाता या उबाला जाता था। बाद में इन्हें सुखाकर किसी चिकनी चीज़ से ख़ूब घोटा जाता था। फिर इनसे आवश्यक आकार के पत्रे तैयार कर लिए जाते थे।

भोजपत्रों पर केवल स्याही से ही लिखा जाता था। इसलिए लिखते समय भोजपत्र के फटने का कोई डर नहीं रहता। इस पर सीधी रेखाओं वाले अक्षर भी लिखे जा सकते हैं। लेकिन ताड़पत्रों पर, विशेषतः दक्षिण भारत में, लोहे की छड़ से अक्षर कुरेदे जाते थे और बाद में इस पर काजल का चूर्ण फैला दिया जाता था। इस प्रकार ताड़पत्र पर काले अक्षर बन जाते थे। वैसे, ताड़पत्रों पर स्याही से भी लिखा जाता था। ताड़पत्रों के बीच में छेद करके





***मशीन** से काग़ज़ बनाने का आधुनिक तरीक़ा। बाएं : पेड़ों के कटे और छिले हुए तने मशीन में कुटाई के लिए भेजे जा रहे हैं। दाएं : मशीन में से निकलता हुआ लकड़ी का बुरादा और बारीक टुकड़े।*

और उनमें डोरी डालकर पुस्तकें तैयार की जाती थीं। ऊपर-नीचे लकड़ी के पट्टे रहते थे। ऐसी पुस्तकों की डोरियां ढीली करके पत्रों को आसानी से पढ़ा जा सकता है।

आधुनिक काग़ज़

आज जो काग़ज़ हम इस्तेमाल करते हैं, वह कई तरह का होता है। अलग-अलग तरह का काग़ज़ बनाने के लिए अलग-अलग चीज़ों का इस्तेमाल किया जाता है। साधारणतः काग़ज़ बनाने के लिए लकड़ी (ख़ासकर बांस) का उपयोग किया जाता है।

लकड़ी छोटे-छोटे रेशों से बनी होती है। ये रेशे अपनी प्राकृतिक अवस्था में लिग्निन नामक एक पदार्थ की मदद से आपस में जुड़े होते हैं। काग़ज़ बनाने की प्रक्रिया में इसे अलग कर दिया जाता है। लकड़ी के इन रेशों की लुगदी बनाई जाती है। लुगदी बनाने के मुख्यतः दो तरीक़े है। पहला मशीनी तरीक़ा, दूसरा रासायनिक तरीक़ा। मशीन से जो लुगदी बनती है, उससे बनने वाला काग़ज़ अख़बारी काग़ज़ की तरह पीला तथा कम टिकाऊ होता है। जबकि रासायनिक तरीके से तैयार लुगदी का काग़ज़ अच्छी श्रेणी का और टिकाऊ होता है। लेकिन इस तरीक़े में अंत में जो अवशेष बचते हैं वे प्रदूषण फैलाने वाले तथा ज़हरीले होते हैं।

लुगदी को साफ़ करने के लिए पानी से कई बार धोया जाता है। फिर साफ़ गूदे को सफ़ेद बनाने के लिए कुछ और रसायन मिलाए जाते हैं। इसके बाद लुगदी को कूटा जाता है। काग़ज़ की मज़बूती, लचीलापन आदि लुगदी की कुटाई पर निर्भर करती हैं। आजकल लुगदी बनाने से लेकर काग़ज़ बनाने तक का सारा काम मशीनों से ही होता है। हालांकि हाथ से भी काग़ज़ बनाया जाता है और उसकी भी बहुत मांग है।

काग़ज़ और पर्यावरण

काग़ज़ बनाने में सबसे अधिक बांस का इस्तेमाल किया जाता है। क्योंकि यह अधिक रेशेदार होता है। एक अनुमान के अनुसार बांस के कुल सालाना उत्पादन का 51 प्रतिशत काग़ज़ के कारखाने इस्तेमाल करते हैं। बाकी का बांस गांव और शहरों में रहने वाले वे कारीगर इस्तेमाल करते हैं, जो बांस से विभिन्न चीज़ें बनाते हैं। लेकिन धीरे-धीरे बांस के जंगल ख़त्म होते जा रहे हैं। इससे सबसे ज्यादा नुकसान इन कुटीर उद्योगों का हो रहा है।

बांस की कमी होने पर कच्चे माल के तौर पर अन्य चीज़ों का इस्तेमाल भी काग़ज़ बनाने में किया जाता है। जैसे फ़सलों के डंठल और पुआल। देश में बनने वाले कुल काग़ज़ का 15 प्रतिशत पुआल से बनता है। लेकिन पुआल बड़ी मात्रा में पशुओं के चारे के रूप में भी उपयोग होता है। लेकिन काग़ज़ मिलों में बढ़ती हुई खपत के कारण पशुओं का हिस्सा ही मारा जाता है।

ये सिर्फ़ दो उदाहरण हैं। तुम इससे अंदाज लगा सकते हो कि हमारे चारों तरफ दिखाई देने वाले काग़ज़ के अंबार के लिए वास्तव में कितने पेड़ों की बलि चढ़ती होगी?

इतना ही नहीं देश के कुछ हिस्सों में आजकल ऐसे जंगल लगाने पर ज़ोर दिया जा रहा है, जिनमें काग़ज़ बनाने के काम आने वाले पेड़ हों।

दूसरी तरफ पेपर मिलें हवा और पानी को भी प्रदूषित करती हैं। पेपर मिलों में पानी का सबसे अधिक उपयोग होता है। मिल का गंदा पानी आसपास फैलकर पानी के दूसरे स्रोतों को भी प्रदूषित करता है। मध्यप्रदेश में शहडोल के पास स्थित पेपर मिल से वहां बहने वाली सोन नदी लगातार प्रदूषित होती रही है। इस नदी के किनारे बसे गांव इसी प्रदूषित पानी का इस्तेमाल करते हैं।

तो जब एक तरफ काग़ज़ बनाने के लिए जंगल कट रहे हों और दूसरी तरफ काग़ज़ की मिलें हमारे पर्यावरण को लगातार प्रदूषित कर रही हों तब हमें भी काग़ज़ का इस्तेमाल सोच-समझकर करना चाहिए। वरना वह दिन दूर नहीं जब न तो पेड़ होंगे और न काग़ज़।

इस लेख में आए चित्र इन किताबों से साभार लिए गए हैं:-
टाइम लाइफ सीरीज़। मास्टरपीसेज़ फ्रॉम द नैशनल म्यूज़ियम कलेक्शन। द वंडरफ़ुल वर्ल्ड ऑफ बुक्स। प्राचीन विश्व इतिहास का परिचय। द न्यू इलस्ट्रेटेड साइंस एंड इंवेंशन इंसाइक्लोपीडिया। न्यू लारूज़ इंसाइक्लोपीडिया ऑफ माइथोलॉजी।

संदर्भ : भारतीय लिपियों की कहानी-गुणाकर मुले।

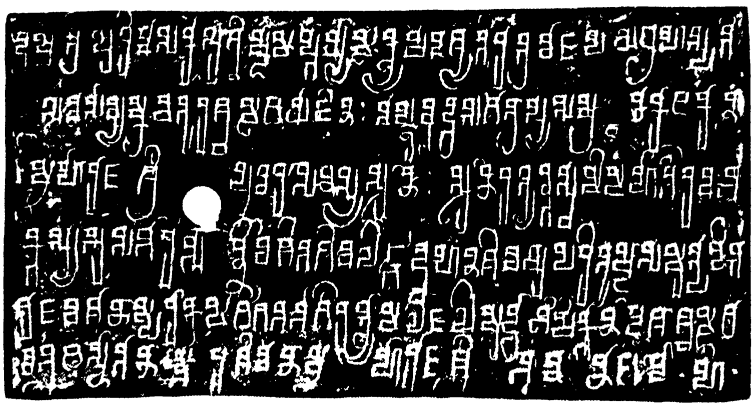
लिखने के माध्यम



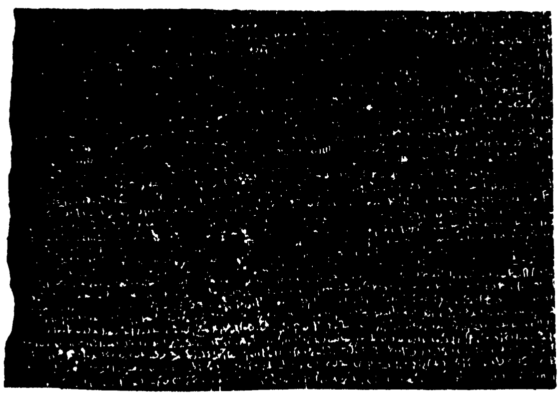
प्राचीन मिस्र के यूगारित शहर के एक पुस्तकालय से प्राप्त मिट्टी की एक पाटी। इस पर कीलाक्षरी लिपि में वहां के निवासियों और देवी-देवताओं के बारे में लिखा है। यह पाटी लगभग 3400 वर्ष पुरानी है।



तक्षशिला के एक बौद्ध मंदिर से प्राप्त चांदी की पट्टी। इस पर खरोष्ठी लिपि में तारीख 'ईसवीं 78' और बुद्ध के कुछ उपदेश अंकित हैं।



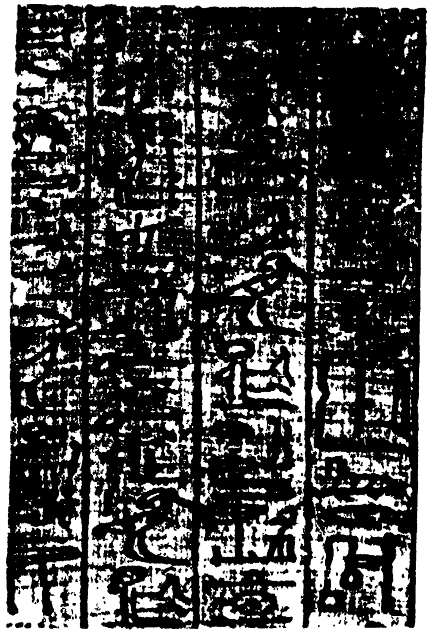
पांचवीं शताब्दी का तांबे की चादर पर संस्कृत में लिखा हुआ भूमि के लेन-देन संबंधी एक दस्तावेज।



ईसा पूर्व 196 के आसपास का यह शिलालेख मिस्र में प्राप्त हुआ है। इस पर वहां के शासक टोलेमी की प्रशंसा लिखी है।

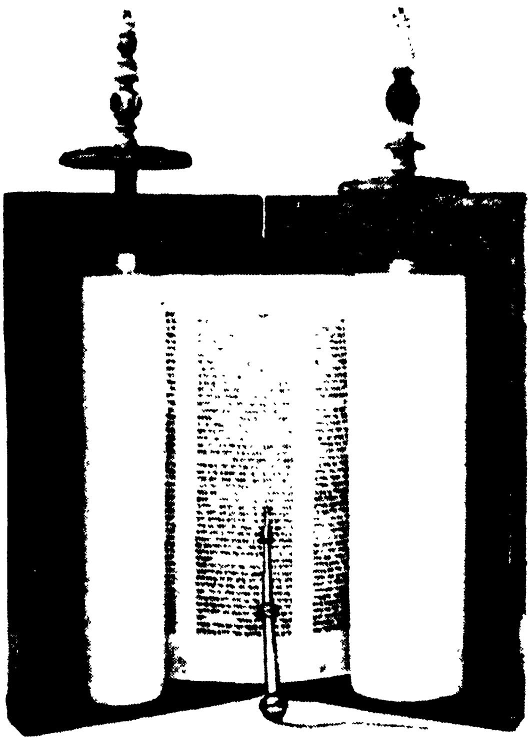


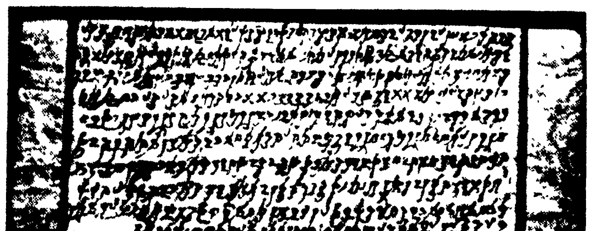
रेशमी कपड़े पर लिखा हुआ चीन का एक पुराना कैलेंडर। इस पर महीनों के नाम, खगोलीय निशान और पेड़ आदि चित्रित हैं। यह ईसा पूर्व 500 के आसपास का है।



पैपीरस पर चित्रलिपि में लिखा हुआ अंत्येष्ठि का तरीक़ा। यह प्राचीन मिस्र में प्राप्त हुआ है।

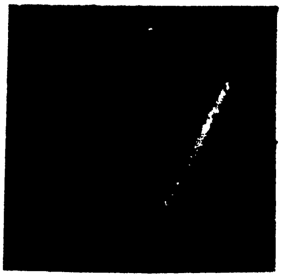
चर्मपट या पार्चमेंट पर हिब्रू भाषा में बाइबिल के कुछ नियम। लगभग 2000 वर्ष पुराना यह दस्तावेज इसराइल में मृत सागर के पास खुदाई में मिला है।



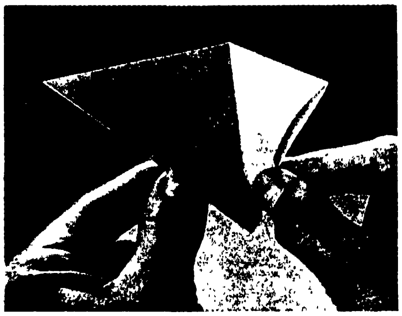


लकड़ी पर खरोष्ठी लिपि में स्याही से लिखा एक संदेश। तीसरी-चौथी शताब्दी में पत्र और व्यवसायिक दस्तावेजों के आदान-प्रदान के लिए इसी तरीक़े का इस्तेमाल किया जाता है।

चिड़िया



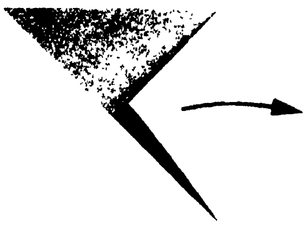
1. एक वर्गाकार काग़ज़ लो। चित्र में दिखाई गई टूटी रेखाओं पर से काग़ज़ को मोड़कर निशान बना लो और फिर उसे खोलो। काग़ज़ को किसी एक कर्ण रेखा पर से मोड़ो। एक त्रिभुजाकार आकृति मिलेगी।



2. त्रिभुज को ठीक बीच से दो हिस्सों में बांटती हुई एक रेखा मिलेगी। त्रिभुज के दाहिने हिस्से को इस रेखा पर से मोडते हुए ऊपर उठाओ।



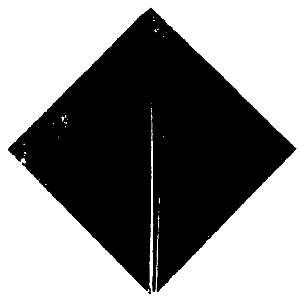
3. उठे हुए हिस्से को बीच में से खोलो। और ऊपर का सिरा नीचे दबाओ ताकि एक वर्ग बन जाए।



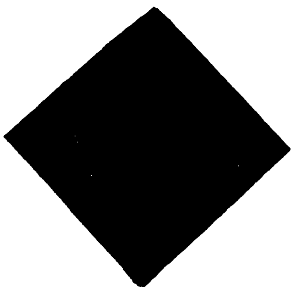
4. वर्ग पर पहले से ही कर्ण बना होगा। वर्ग का बाईं ओर वाला हिस्सा कर्ण पर से मोड़कर दाईं ओर ले जाओ। त्रिभुज के बाएं हिस्से पर भी चित्र 2 से 4 तक की क्रिया दोहराओ।



5. जो आकृति तुम्हें मिलेगी उसे पक्षी आधार कहते हैं। वैसे तो इससे कई चीज़ें बनती हैं पर उनमें ज्यादातर पक्षी ही होते हैं। इसलिए इसे **पक्षी आधार** कहते हैं। अब टूटी हुई रेखाओं पर से ऊपर की सतह के बाएं और दाहिने हिस्सों को तीर की दिशा में मोड़ो।



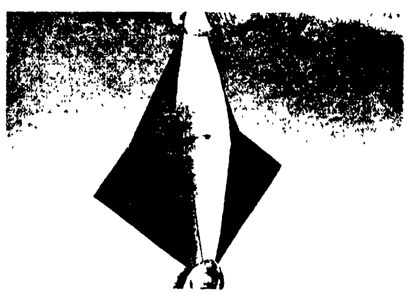
6. ऐसे। आकृति में ऊपर की तरफ जो छोटा त्रिभुज बचता है उसे भी टूटी रेखाओं पर से अपनी और मोड़ो।



7. अब चित्र 5–6 में बने तीनों मोड़ खोल लो।



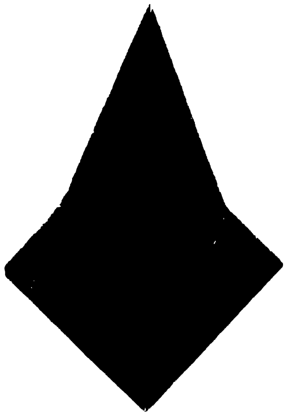
8. अब ऊपर की सतह के निचले सिरे को पकड़कर ऊपर की तरफ धीरे-धीरे उठाओ।



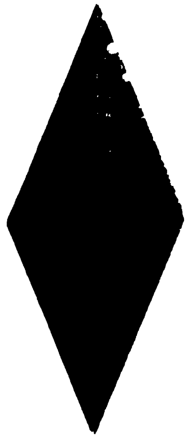
9. इस तरह



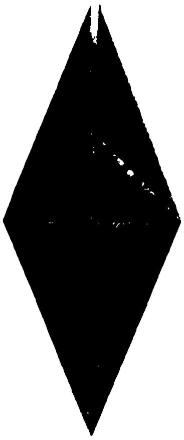
10. और दाईं व बाईं तरफ की फूली हुई सतहों को दबाकर चपटा कर दो।



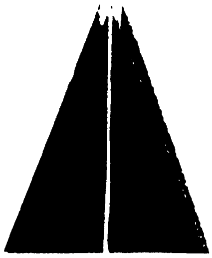
11. मोड़ों को पक्का कर लो और आकृति को पलटकर फिर वही क्रिया (चित्र 5 से 11) दोहराओ। आगे के चित्रों में छींटदार काग़ज़ का इस्तेमाल किया गया है।



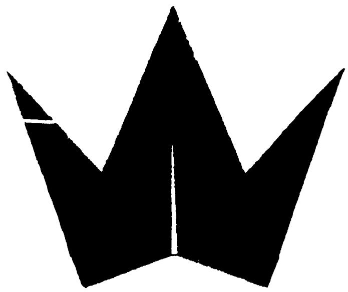
12. जो आकृति तुम्हें मिली वो ऐसी होगी। बाईं ओर की ऊपरी सतह को बीच की रेखा पर से मोड़ते हुए दाईं ओर ले जाओ। आकृति को पलटकर फिर वही क्रिया करो।



13. टूटी रेखाओं पर से नीचे वाले हिस्से की ऊपरी सतह को ऊपर मोड़ो। आकृति को पलटकर फिर वही क्रिया दोहराओ।



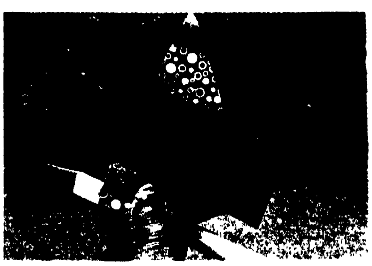
14. तुम्हें अब जो आकृति मिलेगी उसके नीचे और ऊपर की सतहों से पक्षी के पंख बनेंगे। और इनके बीच के दो हिस्सों से गर्दन और पूंछ।



15. गर्दन और पूंछ को चित्रानुसार बाहर निकाल लो। चित्र में बनी सफ़ेद रेखा पर से मोड़कर निशान बनाओ। जहां निशान बनाया वहां से दोनों सतहों को खोलकर एक ऊंगली से ऊपर वाले सिरे को हल्के से नीचे की ओर दबाओ।



16. ऐसा करने पर पक्षी का सिर बन जाएगा।



17. पंखों को किसी पेंसिल या लकड़ी पर लपेटकर हल्का-सा गोलाकार बना लो।



18. पक्षी को एक हाथ से गर्दन के नीचे-से पकड़ो। दूसरे हाथ से उसकी पूंछ पकड़कर धीरे-से आगे-पीछे खींचने से पक्षी अपने पंख हिलाएगा। देखना, कहीं उड़ न जाए।

हाथ से बना कागज़

जैसे हमारे यहां लुहार, मोची, कुम्हार, बढ़ई आदि कारीगर होते हैं, ऐसे ही कुछ जगहों पर कागज़ बनाने वाले कागदी लोग भी हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों औद्योगीकरण बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों ऐसे छोटे धंधे चौपट होते जा रहे हैं। हाथ से कागज़ बनाने का धंधा भी अब देश में कुछ ही जगहों पर बचा है।

ऐसा माना जाता है कि कागज़ बनाने की कला मुग़लों के साथ भारत आई और फिर धीरे-धीरे मुग़ल साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ देश भर में फैल गई। उन दिनों मुख्यतः मुसलमान यह काम करते थे। इन्हें कागदी कहा जाता था। मुग़ल शासक इन्हें संरक्षण देते थे। वे उन्हें कच्चे माल के रूप में पुराने लिखे हुए और इस्तेमाल किए हुए कागज़ उपलब्ध कराते थे और नया बना कागज़ भी ख़रीदते थे। उन दिनों कागज़ का अधिक इस्तेमाल शासकों, विद्वानों और साहूकारों तक ही सीमित था।

हिन्दू शासकों ने भी कागदियों को अपने राज्यों में बसाया और उनकी कारीगरी के विकास के लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध कराईं। उन दिनों ये शासक अपना सारा लेखा-जोखा हाथ से बने कागज़ पर ही करते थे।

हाथ से कागज़ बनाना एक फलता-फूलता व्यवसाय था और कागदी इतने संपन्न थे कि उनके अपने पक्के घर होते थे। उनके घरों को 'कारखाना' कहा जाता था। ये लोग किसी भी नगर या कस्बे के आसपास बस्ती बनाकर रहते थे। इन बस्तियों को कागदीपुरा कहा जाता था। कई शहरों में आज भी कागदीपुरा नाम के मोहल्ले हैं। कुछ ऐसे गांव भी थे जहां सिर्फ़ कागदी बसते थे। इस तरह अलग-थलग रहने से ज़्यादा जगह और पर्याप्त पानी के साथ-साथ अन्य कारीगरों की नज़र से कला की बारीक़ियों को बचाए रखने में मदद मिलती थी।

कागज़ बनाने के लिए फटे-पुराने चीथड़ों या ऐसी ही अन्य रेशेदार चीज़ों का उपयोग किया जाता था। कच्चे माल को लुगदी में बदलने में ही कई दिन लग जाते थे। कागज़ की मांग इतनी ज़्यादा थी कि कागज़ बनने के कई-कई दिन पहले से ही आर्डर ले लिए जाते थे।

इसके बाद जब अंग्रेज़ आए तो वे अपनी ज़रूरत का सारा कागज़ इंग्लैंड से बुलवाने लगे। बड़ी मात्रा में मशीन से बना कागज़ भारत आने लगा और बाज़ार में बिकने लगा। फिर भारत में भी कागज़ बनाने के कारखाने लगाए जाने लगे। धीरे-धीरे हाथ से बने कागज़ की मांग कम होती गई। दूसरी तरफ तकनीकी सलाह और कच्चे माल के स्रोतों के अभाव में उत्पादन बिलकुल ही कम हो गया। कागदियों ने बचे रहने की और अपनी कला को बचाए रखने की आख़िरी कोशिश में पुराने इस्तेमाल किए हुए कागज़ से नया कागज़ बनाना शुरू किया। लेकिन इससे कागज़ की क्वालिटी गिर गई।

(शेष पृष्ठ 40 पर)



जयपुर के पास सांगानेर नामक गांव में आज भी कागदी बसते हैं और परंपरागत तरीक़े से कागज़ बनाते हैं।

आर्यभट

अब धरती का मानव चांद पर पहुंच गया है। आज ज्योतिष, गणित तथा तकनीकी ने बहुत उन्नति की है। मनुष्य चांद पर पहुंचने के बाद अब दूसरे ग्रहों पर भी पहुंचने की कोशिश कर रहा है। आदमी ने इतनी उन्नति कैसे की? ज़ाहिर है कि यह सब दस या सौ साल में नहीं हुआ है। हज़ारों सालों से आदमी आकाश के ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन करता आया है। पुराने ज़माने के जिन विद्वानों ने आकाश का गहरा अध्ययन किया है उनमें हमारे देश के एक ज्योतिषी **आर्यभट** का स्थान बहुत ऊंचा है। आर्यभट को बहुत से लोग 'आर्यभट्ट' लिखते हैं। मगर यह ग़लत है। लोग सोचते हैं कि वे ब्राह्मण होने के कारण 'भट्ट' ही होना चाहिए। मगर उन्होंने अपना नाम 'आर्यभट' ही दिया है। दूसरे भारतीय ज्योतिषियों ने उन्हें 'आर्यभट' ही लिखा है। 'भट' शब्द का अर्थ है 'योद्धा'।

पुराने ज़माने में ज्योतिष और गणित की पढ़ाई साथ-साथ होती थी। इसलिए हमारे देश की पुरानी पुस्तकों में ज्योतिष और गणित की बातें साथ-साथ बतलाई गई हैं। आर्यभट जितने बड़े ज्योतिषी थे, उतने ही बड़े गणितज्ञ भी थे। उन्होंने **आर्यभटीय** नाम से एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में गणित के साथ-साथ ज्योतिष की भी चर्चा है। यह पुस्तक है तो छोटी, लेकिन इसमें आर्यभट ने गणित और ज्योतिष की वे सारी बातें लिख दी हैं जो उनके समय तक खोजी गई थीं। उन्होंने यह पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी है।

पुराने ज़माने में हमारे देश में ज्योतिष और गणित के ग्रंथ पद्य में लिखे जाते थे। इसका कारण यह है कि पद्य को आसानी से कंठस्थ किया जा सकता है। आजकल जिस प्रकार विद्यार्थी फ़ार्मूलों यानि सूत्रों को याद करते हैं, उसी प्रकार पुराने ज़माने के विद्यार्थी कविता को कंठस्थ कर लेते थे। आर्यभट की लिखी हुई आर्यभटीय पुस्तक भी कविता में ही है।

आर्यभट ने अपनी पुस्तक में क्या बातें लिखी हैं, यह जानने के पहले हम आर्यभट के बारे में कुछ बातें जानेंगे। आजकल बड़े-बड़े लोगों की जीवनियां लिखी जाती हैं, परंतु पुराने ज़माने में हमारे देश में जीवनियां लिखने का रिवाज़ नहीं था। पंडित लोग अपनी पुस्तकों में अपने बारे में बहुत कम जानकारी देते थे। यही कारण है कि हम अपने प्राचीन वैज्ञानिकों और विद्वानों के जीवन के बारे में बहुत कम जानते हैं। आर्यभट की केवल एक पुस्तक मिलती है। इसी पुस्तक में उन्होंने अपने बारे में दो-चार बातें लिख दी हैं।

अपनी पुस्तक के एक श्लोक में आर्यभट हमें बताते हैं कि उन्होंने **कुसुमपुर** शहर में इस पुस्तक की रचना की थी। कहां है यह कुसुमपुर शहर? आज के पटना शहर को पुराने ज़माने में पाटलिपुत्र कहते थे। इसी पाटलिपुत्र का एक अन्य नाम कुसुमपुर भी था। अतः हम कह सकते हैं कि आर्यभट पुराने पटना शहर के निवासी थे। कुछ विद्वानों के अनुसार, आर्यभट **अश्मक** जनपद के निवासी थे। यह अश्मक जनपद गोदावरी और नर्मदा नदियों के बीच का प्रदेश था। राजधानी पैठन में थी।

आर्यभट अपनी पुस्तक के एक श्लोक में बताते हैं कि यह पुस्तक उन्होंने 23 साल की आयु में लिखी है। उस समय ईसवी सन् का 499 साल चल रहा था। तब से आज तक लगभग डेढ़ हज़ार साल का लंबा समय गुज़र गया है। आर्यभट जब जीवित थे, तो चंद्रगुप्त और समुद्रगुप्त जैसे शासकों का काल समाप्त हो चुका था और गुप्त साम्राज्य का वैभव फीका पड़ने लगा था। उस समय उत्तर-पश्चिम भारत पर हूणों के हमले हो रहे थे।

आर्यभट के जीवन के बारे में बस इतनी ही जानकारी मिलती है। उनके माता-पिता कौन थे,

उनके गुरू कौन थे, वे कितने साल जीवित रहे, इत्यादि बातों के बारे में हमें आज कुछ भी पता नहीं है। आज उनकी केवल एक ही पुस्तक प्राप्त है।

आर्यभट की **आर्यभटीय** पुस्तक पर 'गागर में सागर भर देने' वाली कहावत लागू होती है। इस पुस्तक में कुल मिलाकर 121 श्लोक हैं। पुस्तक चार भागों में बांटी गई है। ये चार भाग हैं-गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद।

गीतिकापाद में कुल 13 श्लोक हैं। पहले श्लोक में मंगलाचरण है। ये श्लोक गीतिका छंद में हैं, इसीलिए इस भाग को गीतिकापाद कहते हैं। इन श्लोकों में ज्योतिषशास्त्र की कुछ बुनियादी बातों की जानकारी दी गई है। इस पाद का दूसरा श्लोक बड़े महत्व का है। इसमें आर्यभट ने गणना की एक नई पद्धति की जानकारी दी है।

पद्य में लिखी जाने वाली पुस्तकों में गणित के अंकों को लिखना संभव नहीं है। यदि संख्याओं को शब्दों में लिखा जाए तो पद्य बड़े हो जाते हैं। ज्योतिषशास्त्र में बड़ी-बड़ी संख्याएं लिखनी पड़ती हैं। इसलिए संख्याओं को संक्षेप में लिखने के लिए आर्यभट ने एक नई पद्धति का आविष्कार किया। अपने इसी अद्भुत आविष्कार को उन्होंने एक श्लोक में लिख दिया है।

आर्यभट ने संस्कृत भाषा की वर्णमाला को लिया। इसमें जो स्वर हैं उन्हें उन्होंने अ= 1, इ=100, उ=10000,......., ओ= 10,0000000000000 जैसे शतगुणोत्तर मान दिए। फिर, क्, ख्, ग्, ..., ब्, भ् और म् जैसे पचीस व्यंजनों को क्रमशः 1 से 25 तक की संख्याओं के मान दिए। इसके बाद य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स् और ह् व्यंजनों को क्रमशः 30, 40, 50, 60, 70, 80, 90 और 100 के मान दिए। इस प्रकार, उन्होंने वर्णमाला के सारे अक्षरों के लिए संख्यामान निश्चित कर दिए। अब किसी भी संख्या को अक्षरों में लिखा जा सकता था।

अंकों या संख्याओं को इस प्रकार अक्षरों में लिखने की पद्धति को 'अक्षरांक-पद्धति' कहते हैं। आर्यभट के लगभग एक हज़ार साल पहले यूनानी लोग अपनी लिपि की वर्णमाला से ही अंकों को लिखते थे। उनके पास अंकों के लिए स्वतंत्र चिह्न नहीं थे। पर हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से अंकों के लिए स्वतंत्र चिह्न थे। आर्यभट के पहले ही शून्य की खोज हो चुकी थी। इस शून्य और 1 से 9 तक के अंकों की सहायता से सारी संख्याओं को लिखने की पद्धति का भी आविष्कार हो चुका था। पर आर्यभट को अपनी पुस्तक पद्य में लिखनी थी। इसीलिए उन्होंने एक नई अक्षरांक-पद्धति का आविष्कार किया था। इस पद्धति में बड़ी-बड़ी संख्याएं छोटे-छोटे शब्दों से लिखी जा सकती थीं, (जैसे ख्युघृ=43,20,000)। आर्यभट के बाद हमारे देश के दूसरे गणितज्ञों ने भी नई-नई अक्षरांक- पद्धतियों का इस्तेमाल किया।

आर्यभटीय पुस्तक के गणितपाद में कुल 30 श्लोक हैं। इतने ही श्लोकों में आर्यभट ने अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित से संबंधित प्रमुख बातों को संक्षेप में लिख दिया है। आर्यभट ने गणित के बारे में जो बातें बतलाई हैं, वे हाई स्कूल की कक्षाओं तक पढ़ाई जाती हैं। परंतु उनकी पुस्तक में कुछ ऐसी भी बातें हैं जो आज कॉलेजों में भी पढ़ाई जाती हैं। इनमें से कुछ बातें आर्यभट ने स्वयं खोजी थीं।

सभी जानते हैं कि वृत्त किसे कहते हैं और यह कैसा होता है। विद्यार्थी जानते हैं कि वृत्त में त्रिज्या और परिधि के बीच एक ख़ास संबंध होता है। किसी भी वृत्त की परिधि इसकी त्रिज्या या व्यास से कितने गुना बड़ी होती है? विद्यार्थी जानते होंगे कि वृत्त के व्यास की लंबाई को 22/7 या 3.1416 से गुणा करें तो उस वृत्त की परिधि की लंबाई ज्ञात हो जाती है। आज यह बात बड़ी आसान जान पड़ती है परंतु पुराने ज़माने में वृत्त के व्यास तथा परिधि के सही-सही संबंध को बहुत थोड़े-से गणितज्ञ ही जान पाए थे। कारण यह है कि इन दोनों के बीच के संबंध को एक निश्चित पूर्णांक या अपूर्णांक में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस संबंध को एक लगभग सही संख्या में ही व्यक्त किया जा सकता है। आजकल हम वृत्त के व्यास तथा परिधि

के अनुपात को यूनानी अक्षर π (पाई) से लिखते हैं, अर्थात, π=22/7 या 3.1416, लेकिन यह एक काम चलाऊ मान ही हुआ।

हमें यह जानकर अचरज होता है कि आज से डेढ़ हज़ार साल पहले आर्यभट ने इस अनुपात की खोज की थी। उन्होंने लिखा है कि वृत्त का व्यास 20,000 हो तो उसकी परिधि 62,832 होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वृत्त की परिधि/व्यास =62832/20,000=3.1416 है। आर्यभट के पहले भारतीय गणितज्ञों को इस अनुपात का इतना सूक्ष्म मान ज्ञात नहीं था। उनके बाद के कुछ गणितज्ञों ने भी इतने सूक्ष्म मान का इस्तेमाल नहीं किया है। इससे पता चलता है कि आर्यभट एक उच्च कोटि के गणितज्ञ थे।

आज स्कूलों में जो रेखागणित पढ़ाया जाता है, वह यूनान के महान गणितज्ञ यूक्लिड की ज्यामिति पर आधारित है। लेकिन हमारे देश में भी ज्यामिति का अध्ययन पुराने ज़माने से होता आ रहा है। आर्यभट ने अपनी पुस्तक में रेखागणित से संबंधित कई बातें बतलाई हैं। पर जिस एक बात के लिए आर्यभट विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं, वह है **त्रिकोणमिति**। त्रिकोण की तीन भुजाओं और तीन कोणों के संबंधों के बारे में जो गणित रचा जाता है उसे त्रिकोणमिति कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन में त्रिकोणमिति की बड़ी ज़रूरत होती है। आर्यभट ने त्रिकोणमिति में एक नई पद्धति का आविष्कार किया था। इस नई पद्धति को **ज्या** या **भुजज्या** की पद्धति कहते हैं। आजकल स्कूल-कॉलेजों में जो त्रिकोणमिति पढ़ाई जाती है वह आर्यभट की इसी पद्धति पर आधारित है। यूनान के गणितज्ञों को इस पद्धति का ज्ञान नहीं था। यह भारतीय आविष्कार पहले अरब देशों में पहुंचा और उसके बाद यूरोप में इसका प्रचार हुआ।

आर्यभट के समय में दूरबीन जैसी कोई चीज नहीं थी। आंखों से जो और जितना कुछ आकाश में दिखाई देता था उसी का अध्ययन होता था। फिर भी हमारे ज्योतिषियों ने आकाश के ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियों के बारे में काफ़ी बातें जान ली थीं। आर्यभट की पुस्तक के कालक्रियापाद और गोलपाद भागों में कालगणना तथा ज्योतिष के बारे में जानकारी है। आर्यभट सही माने में एक वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपनी पुस्तक में फ़िज़ूल की बातें बिल्कुल नहीं लिखी हैं। उस समय के कुछ लोग मानते होंगे कि ग्रहण के समय राहू-केतु नाम के कोई राक्षस सूर्य और चंद्र को खा जाते हैं। पर आर्यभट ने साफ़ शब्दों में लिखा है कि ये सब झूठी बातें हैं! उन्होंने लिखा कि पृथ्वी की छाया जब चंद्र पर पड़ती है तो चंद्रग्रहण होता है और चंद्र की छाया जब पृथ्वी पर पड़ती है तो सूर्यग्रहण होता है। इस बात से पता चलता है कि आर्यभट अंधविश्वासों में यक़ीन नहीं करते थे। हमारे देश में आकाश के ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर आदमी का भाग्य बतलाने का धंधा पहले भी चलता था और आज भी चलता है। पर आर्यभट ने अपनी पुस्तक में ऐसी अंधविश्वासी बातों का कोई ज़िक्र नहीं किया है।

हमारे देश में आर्यभट के समय में, और बाद में भी सदियों तक, यह मान्यता प्रचलित थी कि पृथ्वी स्थिर है और समूचा खगोल इसकी परिक्रमा करता है। मगर आर्यभट ने स्पष्ट लिखा है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है, इसीलिए खगोल हमें घूमता दिखाई देता है।

आर्यभट की यह मान्यता सही थी। फिर भी उनके बाद के अनेक ज्योतिषियों ने इसे स्वीकार नहीं किया, ब्रह्मगुप्त-जैसे महान गणितज्ञ-ज्योतिषी ने भी नहीं! हां, आर्यभट ने यह नहीं कहा था कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

आर्यभट ने विज्ञान के अध्ययन की एक स्वस्थ परंपरा को जन्म दिया था। उनके समय से हमारे देश में विज्ञान के एक नए युग का आरंभ हुआ था। आर्यभट के बाद हमारे देश में वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि महान वैज्ञानिक हुए। आर्यभट नाम के एक और ज्योतिषी हमारे देश में हुए थे। लेकिन उनका समय इस आर्यभट के बाद का है। उस दूसरे आर्यभट ने 'महासिद्धांत' नामक ज्योतिष का एक ग्रंथ लिखा है।

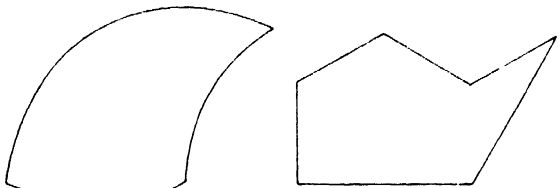
❑ गुणाकर मुले

('प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक' से संक्षिप्त, साभार)



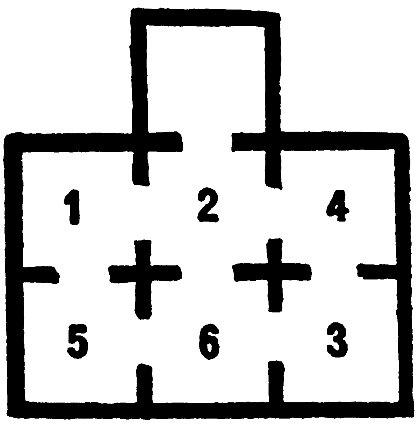
माथापच्ची

(1)



इन आकृतियों को दो-दो हिस्सों में बांटों पर इस तरह कि जो दो हिस्से बनें वे बिल्कुल एक-से हों।

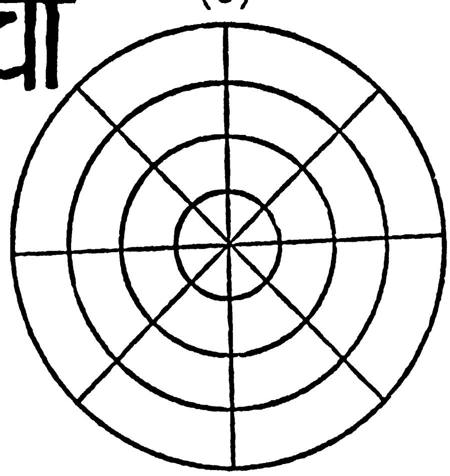
(2)



यह एक चिड़ियाघर में जानवरों को रखने की कोठरियां हैं। यहां 7 कोठरियों में 6 जानवर हैं और सातवीं कोठरी ख़ाली है। जानवर जो भी हैं, उन्हें 1 से 6 तक के अंकों से पहचाना जाता है। एक दिन चित्र में दिखाए तरीक़े से अलग-अलग जानवरों को अलग-अलग कोठरियों में बंद करने के बाद उनकी देखभाल करने वाले व्यक्ति को समझ आया कि कुछ जानवरों को ग़लत कोठरियों में रख दिया गया है।

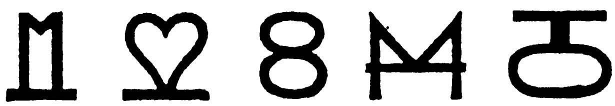
अब जानवर नं. 3 और 4 तथा 5 और 6 की कोठरियां आपस में बदलनी हैं। ख़ाली कोठरी की मदद से जानवरों की अदला-बदली ऐसे करनी है कि वे एक दूसरे के सामने न पडें। तुम ही सुझाओ कि यह कैसे किया जाए?

(3)



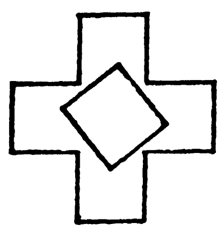
इस चित्र में आठ बिंदु लगाने हैं, बशर्ते हर सीधी लकीर और हर वृत्त पर दो-दो बिंदु हों। कोशिश करो।

(4)



यहां कुछ आकृतियों के वास्तविक और दर्पण में बनी छवि के मिले-जुले रूप दिए गए हैं। इनमें एक ख़ास क्रम और संबंध है। क्या तुम वह क्रम ढूंढकर उसके आधार पर अगली आकृति सुझा सकते हो?

(5)



इन चित्रों में एक जोड़ का निशान है और दूसरे में उसी निशान के बीच में से एक वर्ग काटकर निकाल लिया गया है। इन दोनों आकृतियों को 4-4 ऐसे हिस्सों में बांटो कि उन्हें घुमा-फिरा कर जोड़ने पर दो वर्ग बन जाएं।

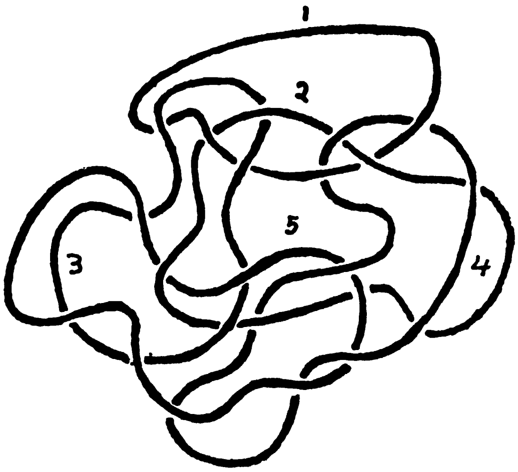
(6)

इस चित्र में वर्गाकार खानों से बनी एक आकृति है। आकृति में बनी लकीरों पर से काटते हुए हमें इसके दो टुकड़े करने हैं। लेकिन शर्त यह है कि उन टुकड़ों को आपस में जोड़ने पर एक ऐसा वर्ग बने जिसकी प्रत्येक भुजा में आठ छोटे वर्गाकार खाने हों।

(7)

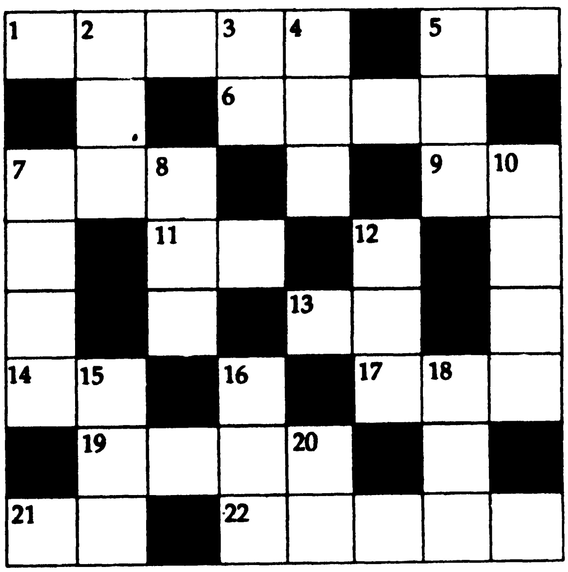
एक दौड़ में एक व्यक्ति आख़िरी धावक से दो नंबर पहले रहा। वही व्यक्ति पांचवे धावक से भी एक नंबर आगे रहा। बताओ दौड़ पूरी करने वाले कुल धावक कितने थे?

(8)



चित्र में पांच धातु के छल्ले आपस में बुरी तरह उलझे हुए हैं। लेकिन इनमें एक छल्ला ऐसा भी है जिसे काटने पर सभी छल्ले अलग हो जाएंगे। क्या तुम ढूंढ सकते हो, वह एकमात्र छल्ला कौन-सा है?

वर्ग पहेली-17



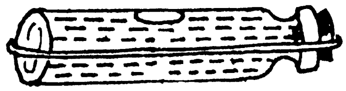
संकेत : बाएं से दाएं

1. जांच पड़ताल (5)
5. लपकने में समय है (2)
6. जनता का शासन (4)
7. दामन में ऊनी कंबल (3)
9. चमक-दमक में लंबाई (2)
11. कम स्वर्ग में मृत्यु (2)
13. आवाज़, पृथ्वी और नाड़ी भी (2)
14. कशम में क्या जोड़ें कि खींचा-तानी हो? (2)
17. जवाब-तलब में झंझट (3)
19. संदेश लाने-ले जाने वाला (4)
21. नापसंद में पांव भी और ओहदा भी (2)
22. लहरिल (5)

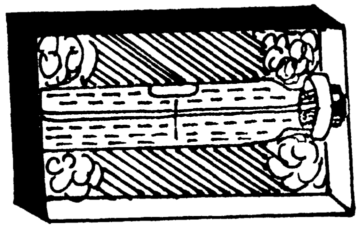
संकेत : ऊपर से नीचे

2. हर क़ीमत में डॉक्टर (3)
3. एक पंथ दो ...... ? (2)
4. अकेला (3)
5. चिट्ठी भी, पत्ती भी (3)
7. निकट (4)
8. बैलगाड़ी के जूए में बांधी जाने वाली रस्सी (3)
10. आग बुझाने वाली गाड़ी (4)
12. तबला बहता में पानी ही पानी (3)
15. शह की हद में मिठास (3)
16. हड्डी का ढांचा (3)
18. मां (3)
20. हमराज़ में रास्ता (2)

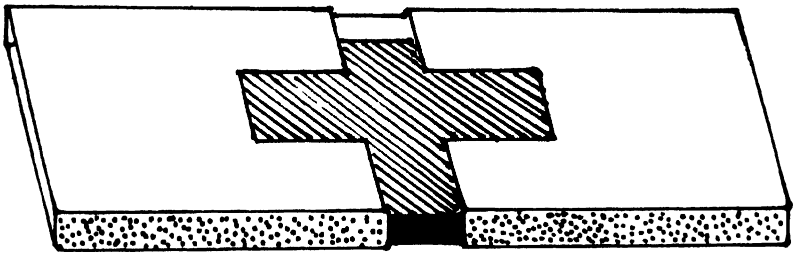

बिंदु
साहू
तुम लेटकर मत पढ़ा करो।
लेटकर पढ़ने से मेरुदण्ड का रोग हो जाता है और दृष्टि दोष भी हो जाता है।
लेटकर पढ़ने की आदत मुझसे छूटने वाली नहीं।
जैसा तुम ठीक समझो।
ये मेरुदण्ड का रोग और दृष्टि दोष है किस चिड़िया का नाम?
बताने पर तो तुम समझोगे नहीं। कुछ दिन प्रतीक्षा करो, तुम्हारा इनसे परिचय हो जाएगा।
क्यों?
क्योंकि तुम लेट कर पढ़ने की आदत नहीं छोड़ सकते।



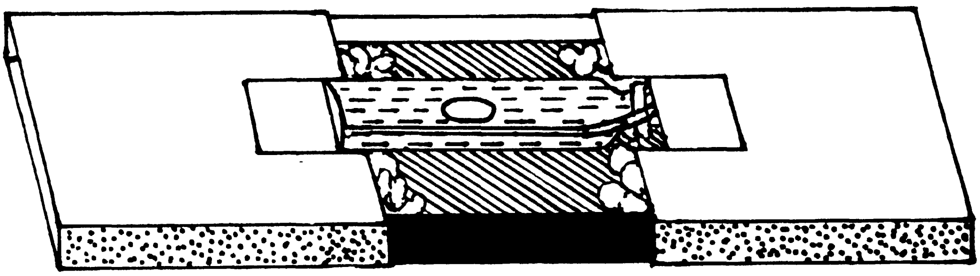
1.



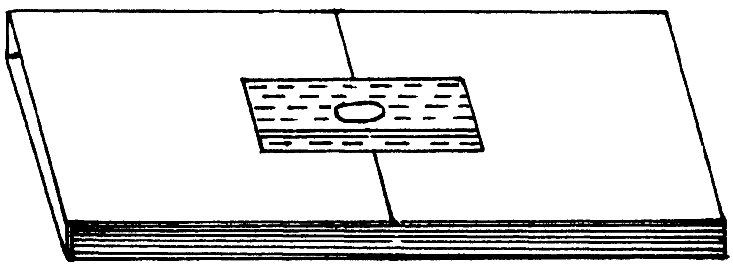
3.



2.



4.



5.

तलदर्शी बनाओ

तलदर्शी या समतलदर्शी एक ऐसा उपकरण है जिससे किसी भी स्थान की यह जांच की जा सकती है कि वह समतल है या उसमें ढलान है।

तलदर्शी बनाने के लिए तुम्हें इंजेक्शन की एक ख़ाली शीशी (2 मि.ली. वाली), दो एक-सी माचिस की डिब्बियां, ब्लेड या कैंची, रूई, मिट्टी का तेल, रबर-बैंड, गोंद और पुराने पोस्टकार्ड की ज़रूरत होगी।

सबसे पहले इंजेक्शन की शीशी में मिट्टी का तेल भरकर उसमें ढक्कन लगा दो (**चित्र-1**)। शीशी को आड़ा लिटाकर देखो। उसमें हवा का एक बुलबुला रहना चाहिए। शीशी पर लंबाई में रबर-बैंड लगा दो ताकि लिटाने पर भी उसमें से मिट्टी का तेल बहने न पाए।

माचिस की डिब्बियों में से एक का भीतरी खोखा निकाल दो और दूसरी वाली के भीतरी खोखे

को दोनों बाहरी खोखों के बीचोंबीच फंसाओ। अब दोनों माचिसों (बाहरी खोखों) के ठीक बीच में 3 से.मी. लंबा और 1 से.मी. चौड़ा एक आयत खींचो। इस आयत को ब्लेड से काटकर निकाल दो। ब्लेड से काटने में यदि दिक़्क़त हो तो खोखों को अलग करके आयत के निशान पर से कैंची से भी काट सकते हो **(चित्र-2)**।

अब एक भीतरी खोखे में तेल से भरी इंजेक्शन की शीशी को रखो। शीशी माचिस के खोखे के तल के समांतर होनी चाहिए। अगर ज़रूरत पड़े तो खोखे में रूई बिछाकर शीशी को समांतर कर लो। शीशी के अंदर हवा का बुलबुला लगभग खोखे के बीच में होना चाहिए **(चित्र-3** : यह खोखे का खड़ा चित्र है)।

शीशी वाले खोखे को दोनों बाहरी खोखों के बीच फंसा दो **(चित्र-4)**। बाहरी खोखों का निचला तल समतल होना चाहिए। इसलिए इनके नीचे और आजू-बाजू की सतह पर, पूरी लंबाई के नाप का एक मोटा काग़ज़ (या पोस्टकार्ड) चिपका दो।

अब किसी समतल जगह पर उपकरण को रखो और बुलबुले को ठीक बीच से काटती हुई एक खड़ी रेखा खोखों पर खींचो **(चित्र-5)**। अब उपकरण घुमाकर रखो ताकि दायां भाग (खोखा) बाएं की जगह ले ले और बायां, दाएं की। इस बार भी बुलबुला बीच में ही रहना चाहिए।

लो, तुम्हारा समतलदर्शी तैयार है। इसे किसी भी जगह पर रखकर खोखे पर खिंची रेखा की तुलना में बुलबुले की स्थिति देखकर तुम यह पता लगा सकते हो कि वह स्थान समतल है या नहीं।

❑ बी.पी. मैथिल एवं उमेश चंद्र चौहान

(पृष्ठ 32 से आगे)

यह 1935 के आसपास की बात है। उस समय गांधी जी कुटीर उद्योगों पर ज़्यादा ज़ोर दे रहे थे। उन्होंने काग़ज़ उद्योग में भी ख़ास रुचि दिखाई। देश भर से हाथ से बने काग़ज़ के नमूने एकत्र किए गए। वर्धा के पास मगनवाड़ी में काग़ज़ बनाने का एक केंद्र खोला गया। इस केंद्र में काग़ज़ बनाने के परंपरागत तरीक़ों के अध्ययन के साथ-साथ, उन्हें बेहतर बनाने और औज़ारों को विकसित करने का काम किया गया। इस प्रयास ने मरते काग़ज़ उद्योग में नई जान डाली।

अखिल भारतीय ग्रामीण उद्योग संघ ने भी पूना में हाथ से बने काग़ज़ पर शोध के लिए संस्थान खोला। जब द्वितीय विश्व युद्ध के समय सरकार ने काग़ज़ के आयात पर रोक लगा दी तो हाथ से बने काग़ज़ की मांग फिर से बढ़ गई। पर विश्व युद्ध के थमते ही आयात पर लगी रोक उठा ली गई।

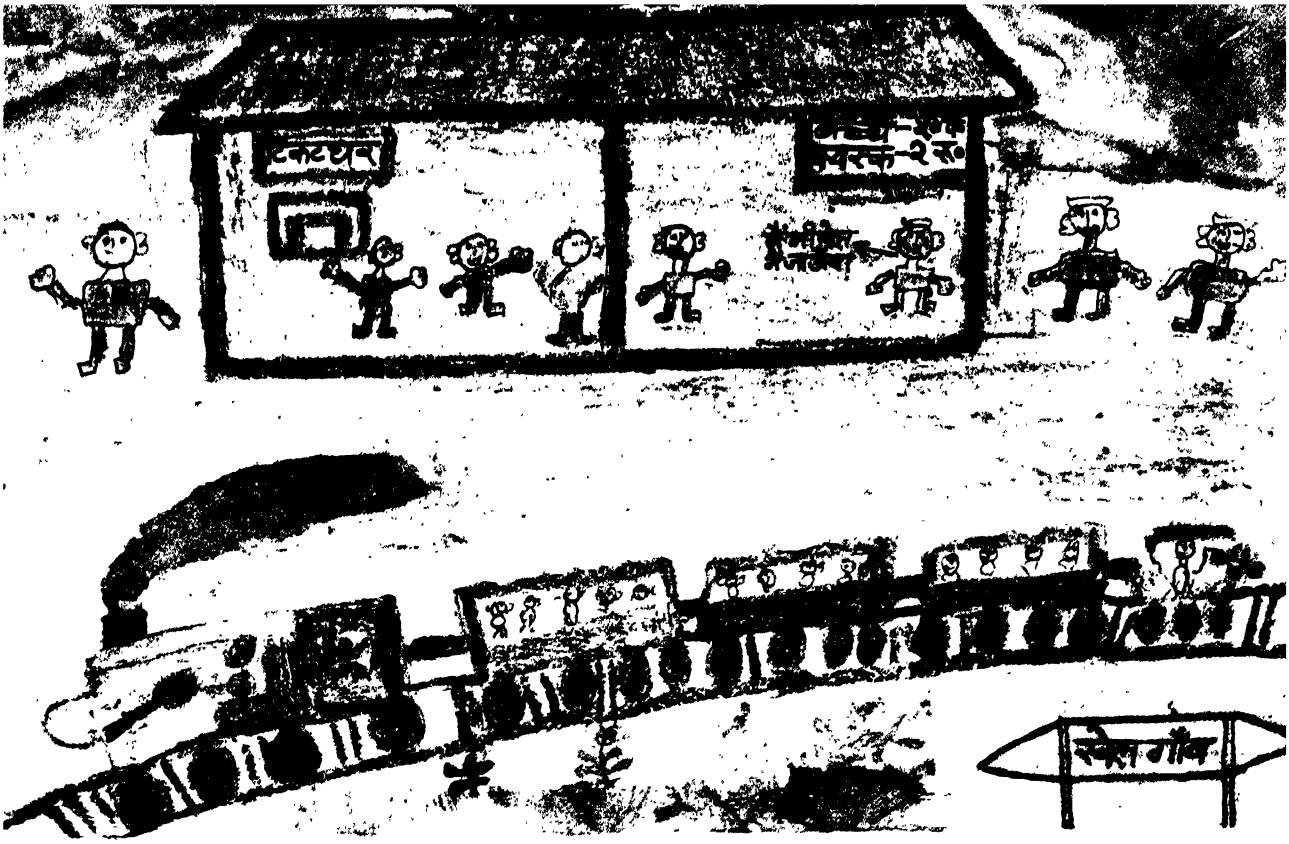
1953 में अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामीण उद्योग बोर्ड का गठन हुआ। जिसकी देखरेख में हाथ से बनाए जाने वाले काग़ज़ के उद्योग का विकास हुआ।

1954 में पूना में एक काग़ज़ शोध केंद्र की स्थापना की गई। जिसने बिजली और तेल से चलने वाली छोटी-छोटी ऐसी मशीनें बनाईं जिनका ग्रामीण इलाकों में काग़ज़ उद्योग में उपयोग किया जा सके। काग़ज़ उद्योग लगाने के लिए खादी और ग्रामीण उद्योग कमीशन ने आर्थिक मदद की। सन् 63-64 तक भारत में ऐसा काग़ज़ बनाने वाले 250 केंद्र थे। इनमें कई तरह का काग़ज़ बनता है जैसे सोख्ता काग़ज़, छत्रा काग़ज़, कार्ड बोर्ड, लिखने और छपाई के लिए विशेष काग़ज़। यह काग़ज़ सरकार और खादी ग्राम उद्योग कमीशन द्वारा मुख्य रूप से ख़रीदा जाता है।

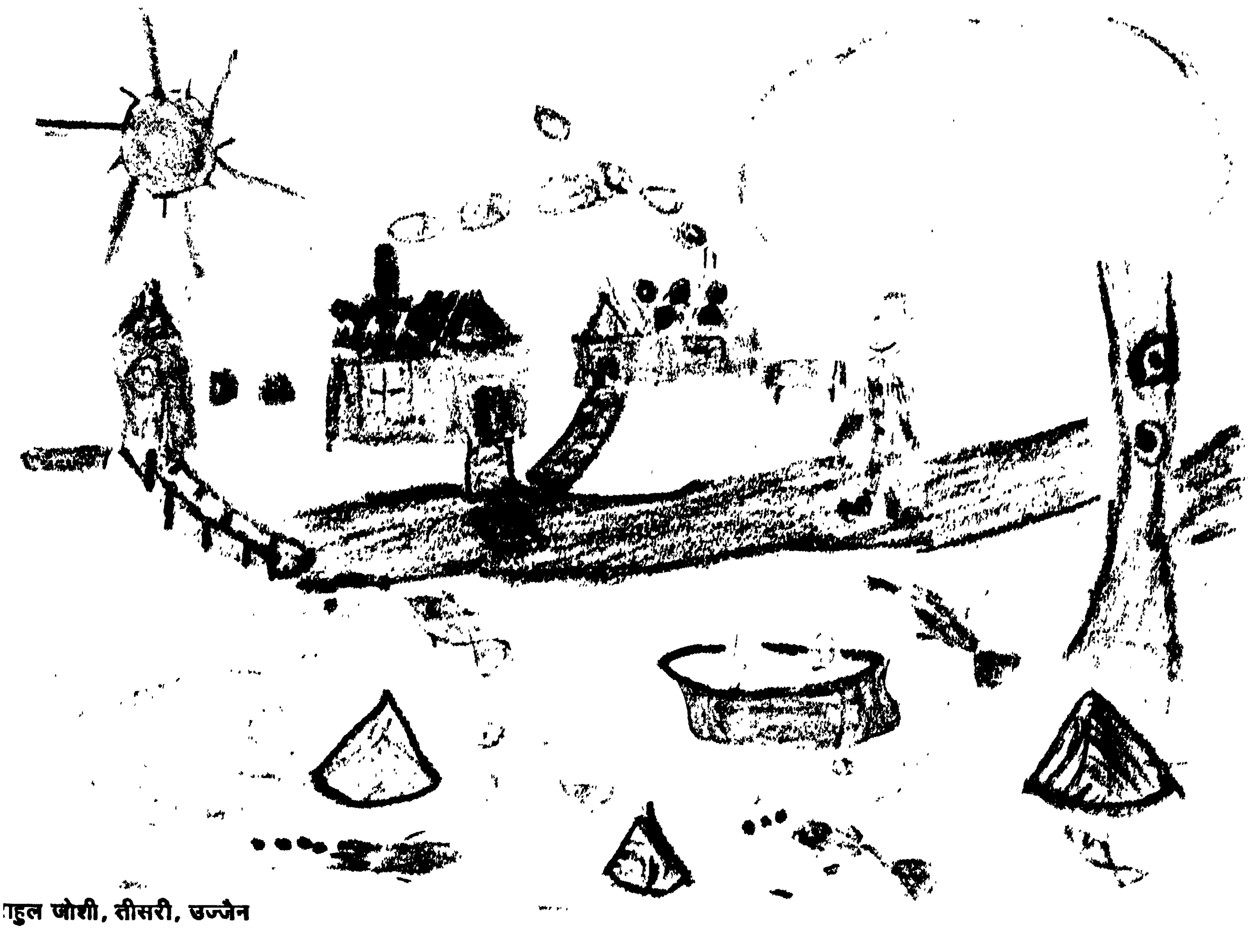
पिछले कुछ सालों में हैदराबाद की क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला ने हाथ से बनाए जाने वाले काग़ज़ के संबंध में काफी शोध किया है, जिससे इस काग़ज़ की लागत कम करने में मदद मिली है।

हाथ से बना काग़ज़ ज़्यादा मज़बूत और टिकाऊ होता है, क्योंकि इसमें रासायनिक पदार्थों का प्रयोग कम होता है। लेकिन कच्चा माल सीमित मात्रा में मिलने, लागत अधिक आने तथा बाज़ार में बेचने के ज़्यादा प्रयास नहीं किए जाने के कारण इस उद्योग का विकास सीमित ही रह गया है।

(चित्र 'इटर्नल इंडिया' से साभार)



ालिंद, सातवीं, काशीपुर, नैनीताल



ाहुल जोशी, तीसरी, उज्जैन

 पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार-पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/



रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा राजकमल ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कालोनी, भोपाल-462016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना